सूक्ष्मागमः

(क्रियापादः)

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः

पं० व्रजवल्लभद्विवेदः



प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

शोधप्रकाशन-ग्रन्थमाला — २

सूक्ष्मागमः

(क्रियापादः)

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः

पं० व्रजवल्लभद्विवेदः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक:
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी० ३५/७७, जंगमवाडी मठ
वाराणसी – २२१००१

प्रथम संस्करण, सन् १९९४

मूल्यम् : Rs 150

जौहरी प्रोसेस
जंगमवाडी कटरा
वाराणसी – २२१००१

मुद्रक
जौहरी प्रिंटर्स
४१, शिवाजी नगर
महमूरगंज, वाराणसी

Research Publications Series — 2

SŪKṢMĀGAMAḤ

KRIYĀPĀDAH

Translation with Notes

Edited by

Pt. Vrajavallabha Dwivedi

Director, Shaiva Bharti Shodhapratisthan

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM

Jangamawadimath, Varanasi – 221001

Published by:
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi – 221001

First published 1994

Price : Rs 150

Laser Typeset at:
Jauhari Process
Jangamawadi Katra
Varanasi — 221001

Printed at:
Jauhari Printers
41, Shivaji Nagar
Mahmoorganj, Varanasi

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक



श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर

श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी का

शुभाशीर्वचन

भगवान् शिव ने लोकोद्धार के लिये अपने सद्योजात मुख से ऋग्वेद का, वामदेव मुख से यजुर्वेद का, अघोर मुख से सामवेद का, तत्पुरुष मुख से अथर्ववेद का और ईशान मुख से अट्ठाईस शैवागमों का आविर्भाव किया। कामिक से वातुल पर्यन्त इन शैवागमों की संख्या अट्ठाईस है। प्रत्येक आगम ज्ञानपाद, क्रियापाद, योगपाद और चर्यापाद नामक चार पादों से युक्त है। भारतीय सनातन धर्म-दर्शन के ये निगमागम ही मूल आधार हैं। सभी सनातन धर्मावलम्बी निगमागमोक्त धर्माचरण से ही परम पुरुषार्थ को पा रहे हैं।

निगम और आगम भगवान् शिव से ही प्रादुर्भूत हैं, अत एव परस्पर विरुद्धार्थक नहीं है। श्री नीलकण्ठ शिवाचार्यजी ने अपने क्रियासार ग्रन्थ के प्रथमोपदेश में इस विषय का इस प्रकार समर्थन किया है—

परस्पराविरुद्धार्थाः शिवोक्ता निगमागमाः।
अल्पबुद्धिभिरन्योन्यं विरोधः परिकल्प्यते॥

उपर्युक्त अट्ठाईस शैवागमों के पूर्व भाग में शैव धर्माचरण और उत्तर भाग में वीरशैव धर्माचरण प्रतिपादित है। यह बात सिद्धान्तशिखामणि के निम्न वचन से सिद्ध होती है—

> सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
> निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्॥ (सि० शि० ५।१४)

भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित उस वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश के अनुसार श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पाँच आचार्यों ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया है। इन आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट वह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में संगृहीत है। इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त उपर्युक्त पंचाचार्यों द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अतः श्री जगद्गुरु पंचाचार्यों को वीरशैव धर्म के संस्थापकों के रूप में माना गया है।

सुविपुल वह प्राचीन आगम साहित्य दुर्लभ होता जा रहा है। अभी हमारे संस्थान के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम नामक चार आगमों का प्रकाशन हिन्दी भाषानुवाद, टिप्पणी और परिशिष्टों के साथ करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस कार्य के लिये हमारे शोध प्रतिष्ठान के आगम-तन्त्रशास्त्र के विशेषज्ञ निदेशक, राष्ट्रियपण्डित माननीय प० व्रजवल्लभ द्विवेदी का उल्लेखनीय योगदान रहा है। आपने उक्त चार आगमों में से प्रथम तीन का संपादन, टिप्पणी आदि कार्य स्वयं किया है और कारणागम का संपादन प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय ने किया है। इन दोनों विद्वानों के सहयोग से, प्रतिष्ठान की परामर्शदात्री समिति के सौजन्य से और यहाँ अध्ययनरत प्रबुद्ध छात्रों के प्रयत्न से यह प्रकाशन-कार्य सुचारु ढंग से सम्पन्न हुआ है।

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी के आविर्भाव-काल महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर इन चारों आगमों को हम शिवार्पित कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि इनके प्रकाशन से जिज्ञासु विद्वानों तथा शोध-छात्रों को समुचित लाभ होगा। इस कार्य के सम्पादन में तत्परता से लगे हुए सभी महानुभावों पर श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी का, काशी विश्वेश्वर और माता अन्नपूर्णा का निरन्तर कृपाशीर्वाद रहे।

महाशिवरात्रि, २०५० वि. **इत्याशिषः**

प्रकाशकीय वक्तव्य

शिवोपासना की पद्धति हमारे भारतवर्ष में सबसे प्राचीन एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। ऋक्, यजुः और अथर्व वेदों में शिव के ईश, ईश्वर, रुद्र, शितिकण्ठ, सर्वज्ञ, कपर्दी आदि अनेक नाम पाये जाते हैं। ऋग्वेद के ६०-७० सूक्तों में शिव के नाम, प्रभाव और स्वरूप आदि का वर्णन है। यजुर्वेद में क्रोधित शिव को शान्त करने के लिये शतरुद्र का स्वतन्त्र विधान किया गया है। इस वेद का सोलहवाँ अध्याय तो रुद्रमहिमा का प्रत्यक्ष प्रमाण ही है।

"नमः शम्भवाय च मयोभवे च नमः शङ्करायराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च" (यजुर्वेद १६।४१)।

इस मन्त्र में शिव की परम पावन महिमा का सम्पूर्ण रस भरा हुआ है। अथर्ववेद में इनको सहस्रचक्षु, तिग्मायुध, वज्रायुध और विद्युच्छक्ति आदि बताया गया है।

वैदिक साहित्य की तरह तन्त्रसाहित्य, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थों में, आरण्यकों में और स्मृतियों में भी शिव की उपासना वर्णित है। तन्त्रों की रचना ही उमा-महेश्वर संवाद पर है। तन्त्रों के द्वारा भगवान् शंकर ने अपने महत्त्व को लेकर अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। सम्पूर्ण तन्त्रसाहित्य शिवस्वरूप, शिवमहिमा, शिवोपासना, लिंगार्चनपद्धति, लिंगपूजा के विधान से भरा हुआ है।

कामिक आदि अट्ठाईस आगम शैवागम कहलाते हैं। इन आगमों का प्रचार एवं प्रसार कम होने से प्रत्येक धार्मिक जिज्ञासु उनका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। उन सभी जिज्ञासुओं के लिये उनका हिन्दी भाषानुवाद करके जब उनको प्रस्तुत किया जायगा, तब शैवागमों का महत्त्व क्या है? यह पता चलेगा। सरल एवं सुलभ हिन्दी भाषा में शैवागमों का न होना खेद की बात है। इस कमी को पूर्ण करने के लिये हमारे परमपूज्य श्रद्धेय श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी जंगमवाड़ी मठ के बहु प्रयास से प्रस्तुत चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम इन चार आगमों को अपने मठ के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा हिन्दी भाषानुवाद के साथ प्रकाशित करवाया जा रहा है। उनके आदेश को शिरोधार्य करते हुए अभी हम इन चार आगमों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

महास्वामी जी के आदेशानुसार शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक आगम-तन्त्रशास्त्र के विद्वान् राष्ट्रिय प० श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने इन आगमों में से प्रथम तीन का तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध दर्शन विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० श्री रामचन्द्र पाण्डेय ने कारणागम का सरल हिन्दी भाषानुवाद, आवश्यक टिप्पणियों और परिशिष्टों के साथ सम्पादन किया है। अतः आप लोगो को मैं सर्वप्रथम धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

उपर्युक्त चारों शैवागम सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वेदान्त विभागान्तर्गत शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्त की आचार्य परीक्षा में १९८४ ई० से पाठ्यग्रन्थों के रूप में स्वीकृत हैं। इस शुभ कार्य के लिये वेदान्त विभागाध्यक्ष प्रो० देवस्वरूप मिश्र महोदय जी प्रसंशा के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में मठ के काशी वीरशैव विद्वत्संघ के कार्यदर्शी श्री ष० ब्र० मरुलसिद्ध शिवाचार्यजी, तोण्टदार्य देव, विश्वनाथ देव, सिद्धराम देव, शिवयोगी स्वामी मैसाळ, श्री महादेव शिवाचार्यजी, श्री विरूपाक्ष शिवाचार्य, सिद्धराम देव सुरकोड, राचोटी देव, मलेयोगीश्वर देव, चिदानन्द तथा विशेष रूप में डॉ० जी० सी० केण्डदमठ आदि सदस्यों ने प्रेस कापी, विषय सूची, श्लोकार्धानुक्रमणी तथा अन्य परिशिष्टों को तैयार करने में हमें अपना अमूल्य समय देकर सहयोग किया है, अत: वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

हमारी प्रार्थना के अनुसार विशेषत: सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संरक्षक प्रो० वी० वेंकटाचलम् महोदय जी का भी समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श मिलता रहा है। अत: मैं उनके प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत आगम ग्रन्थों का लोकार्पण कार्य प्रो० बलदेव उपाध्याय जी एवं प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते जी ने अपने करकमलों से करके महनीय उपकार किया है, एतदर्थ मठ उनके प्रति भी आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता है।

इन ग्रन्थों के मुद्रण कार्य को समय से पूरा करने में उल्लेखनीय सहयोग के लिये जौहरी प्रोसस एवं प्रिन्टिंग प्रेस और खण्डेलवाल प्रेस के मालिकों को तथा कर्मचारीगण को भी धन्यवाद प्रस्तुत करते हैं। साथ ही साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सहायता देने वाले सभी जनों के प्रति मेरी कृतज्ञता समर्पित है।

सभी जिज्ञासु पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे अवश्य इन ग्रन्थों को एक बार मनोयोगपूर्वक पढ़ें एवं अधिकाधिक लाभ उठावें।

१०-३-९४, महाशिवरात्रि।
शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी।

विनीत
डॉ० महेश्वर देव, प्रबन्धक
जंगमवाड़ी मठ (वाराणसी)

प्रस्तावना

संवत् २०५० वि० के अपने श्रावणमासीय शिवपूजा अनुष्ठान के शुभ अवसर पर काशी के जंगमवाडी मठ के श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी ने श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान के तत्त्वावधान में शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की स्थापना का शुभ संकल्प लिया था और बाद में पुरुषोत्तम मास के निमित्त प्रयाग में आयोजित शिवपूजा अनुष्ठान के अवसर पर दि० २०-८-९३ को उक्त दोनों प्रतिष्ठानों की सविधि स्थापना के साथ यह शुभ संकल्प कार्य रूप में परिणत हो गया। वीरशैव सिद्धान्त की अभिवृद्धि में सहायक शैवागम की पाशुपत, सिद्धान्तशैव और प्रत्यभिज्ञा शाखाओं के साथ प्रधानत: वीरशैव सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आगमों का और उनके आधार पर निर्मित शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रकाशन करना एवं उन पर शोधसामग्री प्रस्तुत करना शैवभारती शोध प्रतिष्ठान का प्रधान लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके उद्देश्य और कार्यक्रम का विस्तृत विवरण अलग से प्रकाशित किया जा रहा है। अभी हमे शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की ओर से भाषानुवाद, टिप्पणी और परिशिष्टों के साथ द्वितीय पुष्प के रूप में सूक्ष्मागम को विज्ञ पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है।

इस ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित चन्द्रज्ञानागम की प्रस्तावना में सप्रमाण यह बताया गया है कि 'सिद्धान्त' नाम से प्रसिद्ध कामिक आदि २८ आगमों के उत्तर भाग में वीरशैव मत का सविशेष प्रतिपादन हुआ है। भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित उस वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश से श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पाँच आचार्यों ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया। इन आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट वह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में संगृहीत है। इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त उपर्युक्त पंचाचार्यों के द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अत: श्री जगद्गुरु पंचाचार्यों को वीरशैव धर्म के संस्थापकों के रूप में माना जाता है।

वहाँ सिद्धान्त शैवागमों (१० शिवागम और १८ रुद्रागम) का परिचय देते हुए इनकी नामावली दी गई है और बताया गया है कि सूक्ष्मागम का शिवागमों में सातवाँ स्थान है। इसी को सूक्ष्मतन्त्र भी कहते हैं। प्रस्तुत अंश उसका उत्तर भाग है। इसका केवल दस पटल वाला क्रियापाद ही उपलब्ध है। देवी और महेश्वर के संवाद के रूप में यह निबद्ध है। कैलास शिखर पर आसीन भगवती पार्वती प्रश्न करती हैं और भगवान् शिव

उनका समाधान करते हैं। भगवती कहती हैं कि हे परमेश्वर! आप श्रुतियों और तन्त्रों का, अर्थात् निगम और आगम का सारा रहस्य जानते हैं। मैंने आपके मुख से अनेक तन्त्रों को सुना है, किन्तु इन सबको सुनने से मेरा चित्त चंचल हो उठा है, अतः आप मेरे चित्त के समाधान के लिये सार रूप में कुछ कहने की कृपा कीजिये। उत्तर में भगवान् कहते हैं कि निगम, शास्त्र, पुराण, आगम तो अनेक हैं,किन्तु इनसे सम्यक् ज्ञान की जानकारी नहीं मिल पाती, अतः परमार्थ वस्तु की जानकारी के लिये तुम्हें सूक्ष्मतन्त्र का उपदेश कर रहा हूँ। तुम उसे सावधानी से सुनो। इसके बाद परमेश्वर महान् परतर तत्त्व शिव का स्वरूप बताते हैं।

यहाँ भगवान् शिव के स्थाणु, सादाख्यपंचकातीत, षडध्वकर्ता और पशुपाशविमोचक — ये चार विशेषण हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करते हैं। कूर्मपुराण (१।१०।३९-४०) में बताया गया है कि भगवान् शिव ने ब्रह्मा के मलिन सृष्टि की रचना के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वे अपने निश्चय पर अटल रहे, इसलिये उनको स्थाणु कहा जाता है। इसी प्रसंग में वहाँ (१।१०।४०-४१) शिव के ज्ञान, वैराग्य आदि दस अव्यय तत्त्वों की भी चर्चा की गई है। पाँच सादाख्य तत्त्वों का निरूपण इसी आगम के प्रथम पटल में किया गया है। इस पाँचों सादाख्य तत्त्वों से यह परशिव अतीत है। छः अध्वाओं के विषय में यहाँ पृ० ३ पर टिप्पणी दी गई है। इनके कर्ता भगवान् शिव हैं। पति, पशु और पाश नामक तीन तत्त्व सभी शैवशास्त्रों में वर्णित हैं। पतिस्वरूप भगवान् शिव ही जीव रूप पशुओं को माया आदि पाशों से छुड़ाते हैं, अतः इनको पशुपाशविमोचक कहा जाता है।

इस प्रकार परात्पर शिवतत्त्व का स्वरूप बताकर आगे यहाँ प्रथम पटल में ही पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति नामक [1]पाँच शक्तियों का निरूपण कर बताया है कि एक ही शक्ति पाँच स्वरूप धारण कर लेती है। आगे निर्गुण शिव कैसे सगुण हो जाते हैं और उनसे सादाख्य तत्त्व की अभिव्यक्ति कैसे होती है? एक ही शिवतत्त्व द्विविध, त्रिविध और पंचविध कैसे हो जाता है? इन विषयों पर प्रकाश डालते हुए यहाँ इनके नाम और रूप का वर्णन करके शिवसादाख्य, अमूर्तसादाख्य, मूर्तसादाख्य, कर्तृसादाख्य और कर्मसादाख्य नामक पाँच सादाख्य तत्त्वों का स्वरूप[2] विस्तार से बताया

---

१. अनुभवसूत्र (३।२३-२७) में शान्त्यतीतोत्तरा, शान्त्यतीता, शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति नामक छः कलाओं का तथा चिच्छक्ति, पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति नामक छः शक्तियों का निरूपण मिलता है। वहाँ कहा गया है कि ये परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं, अर्थात् उक्त षड्विध शक्तियाँ ही छः कलाओं का स्वरूप धारण कर लेती हैं।

२. पांडिचेरी से प्रकाशित रौरवागम के द्वितीय भाग के परिशिष्ट (पृ० २१६-२२२) में भी इसी पद्धति से पाँच सादाख्य तत्त्वों का स्वरूप वर्णित है।

गया है। यहाँ (१।२९) स्पष्ट कर दिया गया है कि सगुण सदाशिव ही सादाख्य तत्त्व कहलाता है। पटल के अन्त में भगवान् की २५ लीलाओं की नामावली देकर कहा गया है कि मुक्ति की कामना करने वाले व्यक्तियों को एकमात्र शिव का ही सदा ध्यान करना चाहिये।

द्वितीय पटल के प्रारंभ में भगवती प्रश्न करती हैं कि आपने तो सभी तन्त्रों में पहले यह बताया था कि महादेव के अतिरिक्त इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। अब आप महेश्वर को जगत् का कारण बता रहे हैं और उनकी विभिन्न लीलाओं की भी चर्चा करते हैं। इसके उत्तर में महेश्वर कहते हैं कि यहाँ प्रथम पटल में वर्णित सभी स्वरूप मेरे ही हैं। परमात्मा के लीलारूप तो अनेक हैं, किन्तु उनमें से ये २५ रूप उपासना के लिये अधिक उपयोगी हैं। इतना कह कर भगवान् शिव इस पूरे पटल में इन लीलाओं का निरूपण करते हैं और कहते हैं कि ब्रह्मा इत्यादि समस्त देवता भगवान् की शक्तियों के ही विलास हैं। इनसे बढकर या इनके बराबर अन्य कोई देवता नहीं है, अतः मुक्ति की कामना वाले व्यक्ति को एक मात्र शिव की ही शरण में जाना चाहिये।

विभिन्न शैव पुराणों में भगवान् शिव की इन लीलाओं का वर्णन मिलता है। काशी ज्ञानसिंहासन के ८४वें पीठाधीश्वर श्री १००८ जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी जी ने अपने ग्रन्थ "शिवपञ्चविंशतिलीलाशतकम्" में इनका वर्णन किया है। उस ग्रन्थ को भाषानुवाद के साथ शीघ्र प्रकाशित किया जायगा। उस समय अन्यान्य प्रमाणों से परिपुष्ट इन २५ शिवलीलाओं के ऊपर भी विशेष प्रकाश डाला जायगा। रौरवागम के क्रियापाद के ३५वें अध्याय में भगवान् शिव के सुखासन, सोमास्कन्द, वृषारूढ, त्रिपुरारि, चन्द्रशेखर, कालहारि, कल्याणमूर्ति, नृत्यरत, भिक्षाटन, कंकाल, अर्धनारीश्वर और दक्षिणामूर्ति नामक स्वरूपों की प्रतिमा-निर्माण की पद्धति बताई गई है। वहाँ इनके चित्र भी दिये गये हैं। ये स्वरूप उक्त लीलाओं में ही अन्तर्भूत हैं।

तृतीय पटल में मन्त्र का स्वरूप निरूपित है। सबसे पहले यहाँ ७ करोड़ मन्त्रों में शिव-मन्त्रों की श्रेष्ठता बताई है। शैव-मन्त्रों में एकादश मन्त्रों की, उनमें अघोर मन्त्र की तथा उसमें भी पंचाक्षर मन्त्र की श्रेष्ठता को बताते हुए कहा गया है कि इस पंचाक्षर मन्त्र से समस्त शास्त्रों की और देव-गन्धर्व आदि की सृष्टि होती है। इस प्रकार पंचाक्षर मन्त्र की महिमा को बताने के बाद यहाँ पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्रों के उद्धार की पद्धति प्रदर्शित है और पंचाक्षर मन्त्र के समान ही षडक्षर मन्त्र की भी महिमा गाई गई है। आगे मन्त्र का संक्षेप में विनियोग बता कर उनके प्रत्येक वर्ण के ऋषि, देवता, छन्द, स्वर, वर्ण, मुख आदि का निरूपण किया गया है। आगे [३]करन्यास, अंगन्यास और षडंगन्यास का

---

३. षडक्षर मन्त्र के करन्यास, अंगन्यास और षडंगन्यास का स्वरूप और उसके सृष्टि, स्थिति तथा संहार क्रम का स्वरूप परिशिष्ट में देखिये। षडंगन्यास से अभिप्राय यहाँ ईश्वर के सर्वज्ञता आदि छः अंगों से है।

स्वरूप संक्षेप में बता कर शिव के ध्यान और पूजाविधि का वर्णन करते हुए त्रिविध जप का स्वरूप बताया है। आगम-तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में ही नहीं, मनुस्मृति जैसे स्मार्त ग्रन्थों में भी त्रिविध जप का उल्लेख मिलता है, किन्तु यहाँ का मानस जप का लक्षण सबसे विलक्षण है। यहाँ जप की समाप्ति पर निर्याण[४] मुद्रा का प्रदर्शन विहित है। प्रसंगवश मन्त्र के [५]पुरश्चरण की विधि को संक्षेप में बता कर काम्य जप की विधि को बताते हुए पुनः षडक्षर मन्त्र की महिमा गाई गई है। आगे अक्षमाला (जपमाला) की निर्माण की विधि बता कर उस पर जप किस प्रकार किया जाय, उसका संस्कार कैसे किया जाय और उसको गुप्त कैसे रखा जाय, यह सब बता कर अन्त में पुनः पंचाक्षरी विद्या एवं षडक्षरी मन्त्र की महिमा गाते हुए जप की महिमा का, उसकी गोपनीयता का और योग्य शिष्य को ही इस पूरी विधि का उपदेश देने का निर्देश किया गया है। इस प्रकार सूक्ष्मागम का यह तृतीय पटल [६]मन्त्र और जप संबन्धी महत्त्वपूर्ण सामग्री से समृद्ध है।

चतुर्थ पटल में षडक्षर मन्त्र के रहस्य को स्पष्ट किया गया है। सर्वप्रथम यहाँ साकल्य, शांभव, सौख्य, सावश्य और सायुज्य नामक पाँच [७]प्रणवों का निरूपण किया गया है। गणेशसहस्रनाम के 'पञ्चप्रणवभावित:' इन नाम में पाँच प्रणवों की चर्चा आई है, किन्तु उनका वास्तविक स्वरूप हमें यहीं देखने को मिलता है। षडक्षरी मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करते हुए यहाँ पाँच प्रणवों की उद्धार-विधि को बता कर उनके स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। यह भी बताया गया है कि पंचाक्षर मन्त्र ही प्रणव से युक्त होने पर षडक्षर मन्त्र कहलाता है। आगे षडक्षर मन्त्र की षट्तत्त्वरूपता, षट्स्थलरूपता, षड्लिंगरूपता आदि का विवरण देते हुए कहा गया है कि षडात्मक यह सारा जगत् षडक्षर मन्त्र से प्रसूत है। यहाँ पुनः षडक्षर और पंचाक्षर मन्त्र की महिमा को बता कर अन्त में इस मन्त्र के अधिकारी के लक्षणों का स्पष्ट निरूपण किया गया है।

---

४. जप की समाप्ति पर निर्याण मुद्रा के प्रदर्शन का विधान यहाँ किया गया है। इसका स्वरूप हमें अभी तक कहीं उपलब्ध नहीं हुआ।

५. पुरश्चरण की विधि पर यहाँ (३।४५-४८) संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। इसका विस्तार चन्द्रज्ञानागम की प्रस्तावना में देखिये। महान् तान्त्रिक आचार्य भास्करराय ने नित्याषोडशिकार्णव की अपनी सेतुबन्धव्याख्या के द्वितीय विश्राम के प्रारंभ में (पृ० ११०-११८) इस विषय पर विस्तार से विचार किया है।

६. चन्द्रज्ञानागम के क्रियापाद के आठवें पटल से भी, जहाँ पर कि आठ आवरणों में से अन्तिम मन्त्र नामक आवरण का स्वरूप बताते हुए मन्त्र का, जप का और विशेष कर पंचाक्षरी विद्या का स्वरूप प्रदर्शित है, इस विषय की विशेष जानकारी मिल सकती है।

७. नेत्रतन्त्र (६।३-५) में प्रणव की ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म नामक पाँच अवस्थाएं बताई गई हैं। गणेशसहस्रनामस्तोत्र के श्लो० १३८ के भाष्य में भास्करराय ने तार, वाग्भव, लज्जा आदि की पाँच प्रणवों के रूप में गणना की है। वस्तुतः पंचप्रणवों की सही व्याख्या हमें यहीं देखने को मिलती है।

पंचम पटल में [८]गुरु और शिष्य का स्वरूप प्रदर्शित है। यहाँ प्रथमत: गुरु के लक्षणों को बता कर उनके प्रभाव का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि गुरु के शरीर में समस्त तीर्थों की स्थिति है। पशु, पति और पाश का संक्षिप्त स्वरूप बता कर यहाँ कहा गया है कि पाशों से आबद्ध पशुओं को उनसे छुटकारा पाने के लिये गुरु का सहारा लेना चाहिये। यहाँ विशेष रूप से इस बात का निर्देश किया गया है कि एक परिवार का एक ही गुरु होना चाहिये। आगे शिष्य का लक्षण बता कर कहा गया है कि शिष्य की परीक्षा कर गुरु को उसे शिवाचार[९] का उपदेश करना चाहिये। [१०]भस्म और रुद्राक्ष के धारण की पद्धति की यहाँ संक्षेप में चर्चा है और कुछ न्यासों[११] का भी उल्लेख है। इसके बाद इष्टलिंग के संस्कार की पद्धति बता कर अन्त में वीर माहेश्वर के आचार और निष्ठा का गंभीर विवेचन किया है तथा कहा है कि ऐसा करने से व्यक्ति के जन्म-जन्मान्तर के संचित एवं प्रारब्ध[१२] कर्म भी तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

छठे पटल के प्रारंभ में देवी [१३]लिंगतत्त्व के स्वरूप की जिज्ञासा करती हैं और पूँछती हैं कि इष्टलिंग की पूजा कैसे की जाती है और उसका फल क्या है? इसके उत्तर में भगवान् शिव नाद, बिन्दु और कला का स्वरूप बता कर कहते हैं कि लिंगतत्त्व नाद-बिन्दु-कला

---

८. गुरु नामक प्रथम आवरण के स्वरूप का और गुरु के प्रति शिष्य के द्वारा बरते जाने वाले शिष्टाचार का विस्तार चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के द्वितीय पटल में देखा जा सकता है।

९. चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के नवम पटल में शिवाचार के साथ लिंगाचार, सदाचार, भृत्याचार और गणाचार नामक पाँच आचारों का विस्तार से वर्णन है।

१०. चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के छठे पटल में भस्म नामक छठे आवरण का तथा सातवें पटल में रुद्राक्ष नामक सातवें आवरण का स्वरूप विस्तार से देखिये।

११. न्यासों की संक्षिप्त चर्चा चन्द्रज्ञानागम (१।११।२०-२४, ३२-३७) में भी मिलती है। षडक्षर मन्त्र के सृष्टि, स्थिति और संहार न्यासों का क्रम परिशिष्ट में देखिये।

१२. पाँचवें पटल की १९वीं टिप्पणी देखिये (पृ० ५९)। यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रारब्ध कर्म से प्राप्त इस शरीर के रहते उनका क्षय कैसे हो सकता है? इसका समाधान चक्रभ्रमिन्याय से किया जा सकता है। जैसे कुम्हार का चक्का डंडे के हटा लेने के बाद भी बहुत देर तक घूमता रहता है, उसी तरह से प्रारब्ध कर्मों की भोग से समाप्ति हो जाने के बाद भी सिद्धदेह उसकी इच्छा के अनुसार बना रहता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में इसका समाधान दूसरी तरह से किया गया है। उनका कहना है कि अज्ञान दो प्रकार का है— पौंस्न और बौद्ध। जीवन्मुक्त सिद्ध का बुद्धिगत अज्ञान तो नष्ट हो जाता है, किन्तु आणव मल के अवशिष्ट रहने से उसका पौंस्न (आत्मगत) अज्ञान नष्ट नहीं होता। शरीरपात पर्यन्त इस अज्ञान की अनुवृत्ति रहती है और उस अवस्था में कार्म मल का क्षय हो जाने पर भी पौंस्न अज्ञान के कारण शरीर की अनुवृत्ति बनी रहती है। बौद्ध और पौंस्न अज्ञान का स्वरूप हमारे 'निगमागम संस्कृति' नामक ग्रन्थ (पृ० ३५-३६) में देखिये।

१३. चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के तृतीय पटल में अष्टावरण के द्वितीय आवरण के रूप में लिंगतत्त्व का निरूपण मिलता है। कूर्मपुराण के उत्तर विभाग में स्थित ईश्वरगीता के १०वें अध्याय में लिंगतत्त्व का निरूपण हुआ है। कूर्मपुराण के पूर्व विभाग के २५वें अध्याय का नाम ही लिंगाध्याय है। इस प्रसंग में इन स्थलों को भी देखा जा सकता है।

स्वरूप है। लिंग पद की निरुक्ति को बताते हुए वे यहाँ उसकी महिमा का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि यह सारी सृष्टि उससे ही उद्भूत है और उसी में लीन हो जाती है। शिवतत्त्व का विवेचन करने के बाद यहाँ लिंगार्चन की आन्तर पद्धति को बता कर [१४]कर्म, तप, जप, ध्यान और ज्ञान नामक पाँच यज्ञों का स्वरूप वर्णित है। बाह्य पूजा की अपेक्षा यहाँ [१५]अन्तर्याग का महत्त्व प्रदर्शित है। आगे वीरशैवों के लिये इष्टलिंग की करपीठ पर पूजा के तथा प्राणलिंग और भावलिंग की पूजा के क्रम को भी कह कर अष्टोपचार अथवा पंचोपचार पूजा का बाह्य विधान बताया गया है। इसके बाद यहाँ वीरशैव का लक्षण बताते हुए उपदिष्ट है कि वह किस क्रम से षट्स्थलों की उपासना करे। अन्त में लिंगार्चन के फल को बता कर शिवलिंग की निन्दा के दोषों को गिना कर कहा है कि शिवलिंग का पूजक लोक में श्रेष्ठ पुरुष माना जाता है।

शिवपूजा के क्रम को सुनने के बाद सातवें पटल में देवी जिज्ञासा करती हैं कि वीरशैवों के अतिरिक्त अन्य कितने प्रकार के शैव होते हैं? उनकी मोक्षप्रद आचार-पद्धति कैसी होती है? इसके उत्तर में भगवान् शिव ने प्रथमत: अनादिशैव, आदिशैव, महाशैव, अनुशैव, अवान्तरशैव, प्रवरशैव और अन्त्यशैव नामक सप्तविध[१६] शैवों के लक्षण बताये हैं। आदिशैवों के विषय में यहाँ बताया है कि ये कौशिक, कश्यप, भरद्वाज, अत्रि और गौतम नामक पाँच [१७]ऋषियों के वंशज हैं। परार्थ पूजा का अधिकार इन्हीं को है। शैवों के ये भेद आचारभेद के कारण हैं। इतना बताने के बाद यहाँ वीरशैवों के भी सामान्य, विशेष और निराभार नामक तीन भेदों का लक्षण बता कर लिंगनिष्ठा का महत्त्व बताया है और इसी प्रसंग में कहा है कि इष्टलिंग का शरीर से वियोग कभी नहीं होना चाहिये। इष्टलिंग का पुन: संस्कार किस स्थिति में हो सकता है और किन स्थितियों में यह संभव नहीं है, इसका खुलासा करते हुए यहाँ बताया गया है कि इष्टलिंग, गुरु, जंगम आदि की सेवा में अपने प्राणों को भी समर्पित कर देने वाला विशेष वीरशैव

---

१४. सिद्धान्तशिखामणि (९।२१-२५) में इसी पद्धति से पंचयज्ञों का विवरण दिया गया है। कारणागम (३।६८-७०) में पंचयज्ञों का स्वरूप मनुस्मृति (३।७०-७२) की पद्धति से किया गया है।

१५. देवीकालोत्तर नामक शैवागम में प्रधानत: अन्तर्याग का ही स्वरूप वर्णित है। आगम-तन्त्रशास्त्र का सिद्धान्त है कि अन्तर्याग द्वारा अन्त:करण की शुद्धि हो जाने पर ही बाह्ययाग (पूजा) करना चाहिये। प्राणलिंग और भावलिंग की तो उपासना इसी पद्धति से की जाती है। शक्तिसंगम तन्त्र (४।११।७४-७९) में अन्त:पूजा पर विशेष जोर दिया गया है। इसीलिये "देवो भूत्वा देवं यजेत्" का सिद्धान्त यहाँ मान्य है और इसके लिये भूतशुद्धि और प्राणप्रतिष्ठा का विधान किया गया है। चन्द्रज्ञानागम (१।११।२७-३१) में विद्यामय देह के प्रसंग में यही पद्धति निरूपित है।

१६. सप्तविध शैवों के साथ वीरशैवों को भी मिलाकर शैवों के आठ भेदों का विवरण चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के दसवें पटल में भी मिलता है। बहुत कुछ समानता होते हुए भी दोनों ही आगमों की अपनी कुछ विशेषताएँ भी हैं। चन्द्रज्ञानागम में कानीन द्विज और देवलकों की चर्चा उल्लेखनीय मानी जा सकती है।

१७. कौशिक आदि पाँच ऋषियों और उनके वंशजों की चर्चा चन्द्रज्ञानागम (१।१०।६-८) में भी है।

कहलाता है। आगे निराभारी[१८] वीरशैव के स्वरूप और उसकी चर्या का वर्णन कर उसके लिये [१९]अत्याश्रमी और अतिवर्णाश्रमी जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। अन्त में जंगम[२०] की और लिंगाराधन की महिमा को बता कर कहा है कि यह अतीव गोपनीय विषय है। अयोग्य व्यक्ति को इसका उपदेश न कर योग्य व्यक्तियों को ही इसकी प्रक्रिया बताना चाहिये।

आठवें पटल में देवी के लिंगांग संबन्ध विषयक प्रश्न का समाधान किया गया है। भगवान् शिव कहते हैं कि षट्स्थलों के सम्यक् ज्ञान से यह संभव है। प्रथमतः यहाँ आचार, गुरु, शिव, चर, प्रसाद और महालिंग नामक षड्विध लिंगों के नाम गिना कर बाद में प्रत्येक लिंग के तीन तीन भेदों का, अर्थात् आचारलिंग के सदाचार, नियताचार और [२१]गणाचार का, गुरुलिंग के दीक्षा, शिक्षा और [२२]अनुभाव का, शिवलिंग के इष्ट, प्राण और भाव का, चरलिंग के स्वयं, चर और पर का, प्रसाद लिंग के शुद्ध, सिद्ध और प्रसिद्ध का तथा अन्तिम महालिंग के पिण्डज, अण्डज तथा बिन्द्वाकाश नामक भेदों का लक्षण बताया गया है। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती हैं कि इन सब लिंगों की पूजा कैसे की जाती है, इसकी विधि क्या है और उससे क्या फल मिलता है? उत्तर में भगवान् शिव भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य नामक छः अंगस्थलों के नाम बताकर पुनः इनका लक्षण बताते हैं। इसके बाद गुरुभक्त, लिंगभक्त और चरभक्त नामक त्रिविध भक्तों का निर्देश कर आचारलिंग के मोही, भक्त, पूजक, वीर, प्रसादवान् और प्राणी नामक छः प्रकार के भक्तों का और

---

१८. निराभारी वीरशैवों की चर्या के प्रसंग में यहाँ उनको पंचमुद्राधर कहा गया है। पंचमुद्रा शब्द का अर्थ पृ० ८६ की टिप्पणी में दिया है। वहाँ कामाक्ष शब्द का अर्थ अस्पष्ट है। पाशुपत तथा बौद्ध सम्प्रदाय में छः अथवा पाँच मुद्राओं की चर्चा आती है। वहाँ उनके नाम ये हैं — कर्णिका, रुचक, कुण्डल, शिखामणि, भस्म और यज्ञोपवीत। यहाँ यज्ञोपवीत को हटा देने पर इन मुद्राओं की संख्या पाँच रह जाती है।

१९. अत्याश्रमी शब्द का कूर्मपुराण में अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। इसका अर्थ है चार आश्रमों की व्यवस्था से जो ऊपर उठ गया है। चन्द्रज्ञानागम (१।१०।४२-४४) में स्वतन्त्र और वैदिक निराभारी वर्णित है। स्वतन्त्र निराभारी को हम अत्याश्रमी कह सकते हैं।

२०. लिंगनामक आवरण की ऊपर चर्चा हो चुकी है। जंगम नामक आवरण का विशेष विवरण चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के चतुर्थ पटल में देखिये।

२१. चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के पंचाचार के निरूपक नवम पटल में लिंगाचार, सदाचार, शिवाचार, भृत्याचार और गणाचार नामक पांच आचारों का विवरण दिया गया है। यहाँ आचारलिंग से संबद्ध तीन आचारों का स्वरूप एक एक श्लोक में वर्णित है।

२२. प्रत्यभिज्ञा दर्शन के ग्रन्थों में "गुरुतः शास्त्रतः स्वतः" किरणागम का यह श्लोक उद्धृत है। यहाँ ज्ञानप्राप्ति के तीन स्रोत बताये गये हैं। योगवासिष्ठ में भी इनकी चर्चा मिलती है। वहाँ स्वतः पद का अर्थ स्वानुभव किया गया है। दीक्षा, शिक्षा और अनुभाव को हम इन्हीं तीन प्रत्ययों से जोड़ सकते हैं। विशेष विवरण के लिये 'लुप्तागमसंग्रह' द्वितीय भाग का उपोद्घात (पृ० २१६-२१७) देखिये।

फिर इसी पद्धति से गुरुलिंग, शिवलिंग, चरलिंग, प्रसादलिंग और महालिंग के भी छः छः प्रकार के भक्तों का लक्षण बता कर कहा गया है कि इस प्रकार लिंगस्थलों की संख्या ३६ हो जाती है। इनमें भक्त (अंग) को एक के बाद दूसरी स्थिति की तरफ बढना चाहिये। आगे षट्स्थलात्मक अंग (भक्त) को विभिन्न अंगों में इष्टलिंग आदि षड्विध लिंगों की स्थिति को बताते हुए एक के बाद दूसरे के क्रम से महालिंग स्वरूप तक पहुंचने के क्रम को दिखा कर अन्त में कहा है कि लिंग और अंग के संबन्ध का यह ज्ञान गुरु के द्वारा उपदिष्ट पद्धति से ही प्राप्त किया जा सकता है[२३]।

लिंग और अंग के परस्पर के संबन्ध को जान लेने के बाद नवें पटल में देवी भक्तों के माहात्म्य को जानने की इच्छा प्रकट करती हैं। उत्तर में भगवान् शिव कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम नामक चतुर्विध भक्तों का उल्लेख कर कहते हैं कि आचार के भेद से यह होता है। आगे मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम भक्तों के पुनः तीन तीन भेदों को बता कर कहा गया है कि प्राणलिंग की उपासना करने वाले वीरशैव ही उत्तमोत्तम वृत्ति के कारण उत्तमोत्तम भक्त कहलाते हैं। यहाँ देवी भक्तों के लक्षण, उनकी वृत्ति और गुणों के विषय में प्रश्न करती हैं और भगवान् सर्वप्रथम विस्तार से भक्तों के लक्षणों का वर्णन कर उनकी महिमा का भी गान करते हैं। अन्त में यहाँ वीरशैवों की श्रेष्ठ भक्तों में गणना की गई है और कहा गया है कि भगवान् भी[२४] इन भक्तों के पराधीन रहते हैं। भक्त पद की व्युत्पत्ति को बताते हुए यहाँ भक्तों के साथ द्रोह करने से और उनकी सेवा करने से क्या कुफल या सुफल मिलता है, इसका निरूपण कर ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस सूक्ष्म तन्त्र में अब तक जो कुछ बताया गया है, उससे बढ कर दूसरा कोई ज्ञान सभी प्रकार की सम्पत्ति को देने वाला नहीं है।

मोक्षमार्ग के एकमात्र साधन इस ज्ञान को सुन कर अन्तिम १०वें पटल में देवी भगवान् शिव की स्तुति करती हैं। यहाँ भगवान् शिव के पंचब्रह्ममय स्वरूप का, [२५]तत्त्वातीत एवं तत्त्वमय स्वरूप का तथा प्रथम और द्वितीय पटल में वर्णित शिवलीलाओं

२३. सिद्धान्तशिखामणि, कैवल्यसार जैसे ग्रन्थों में लिंग और अंग के संबन्ध की यह प्रक्रिया १०१ स्थलों का वर्णन करते हुए विस्तार से वर्णित है।

२४. पुराणों में इस स्थिति का बहुधा वर्णन मिलता है। भगवान् भक्त के अधीन हैं, इस विषय की अनेक कथाएँ वहाँ देखी जा सकती हैं।

२५. प्रत्यभिज्ञाहृदय के ८वें सूत्र की व्याख्या करते समय क्षेमराज कहते हैं— "विश्वोत्तीर्णमात्मतत्त्वमिति तान्त्रिकाः, विश्वमयमिति कुलद्याम्नायनिविष्टाः, विश्वोत्तीर्णं विश्वमयं चेति त्रिकादिदर्शनविदः"। अभिनव गुप्त, क्षेमराज आदि ने तान्त्रिक शब्द का प्रयोग सिद्धान्त, वाम, दक्ष, भूत और गारुड नामक पंचप्रवाह शास्त्र के अनुयायियों के लिये किया है। प्रधानतः द्वैतवादी सिद्धान्तशैव पंचकृत्यकारी पंचमन्त्रतनु भगवान् शिव को विश्वोत्तीर्ण, विश्व के ऊपर मानते हैं। कुल, कौल और मत दर्शन के अनुयायी स्वात्मदेवतावाद के पोषक हैं। अतः इनकी दृष्टि में परतत्त्व विश्वमय है। त्रिक और क्रम मत के अनुसार तत्त्वातीत परमशिव अथवा भगवती संवित् विश्वोत्तीर्ण हैं। ये ही जब विश्व रूप में भासित होते हैं, तो विश्वमय बन जाते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में प्रयुक्त तत्त्वातीत और तत्त्वमय शब्द भगवान् शिव की इसी विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय स्थिति के सूचक हैं।

का स्तुति के व्याज से वर्णन करते हुए ईश्वर का परित्याग कर देने वाले [२६]शिप्र जनों का भी उल्लेख किया है। समस्त वेद, समस्त देवगण शिव के ही अनुचर हैं। इस समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और विनाश के कारण शिव ही हैं। भगवान् शिव की इस विशेषता पर भी यहाँ प्रकाश डाला गया है कि समस्त अमंगलों के साथ रहते हुए भी आप समस्त मंगलों के प्रदाता हैं। अन्त में भगवती अपनी [२७]चपलता को क्षमा कर देने के लिये कहती हैं। इस स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् शिव पार्वती से वर मांगने को कहते हैं। भगवती सुदृढ भक्ति का वर माँगती हैं। भगवान् शिव इस सुदृढ भक्ति के अतिरिक्त दूसरा वर भी देते हैं कि भगवती द्वारा गाई गई इस स्तुति का जो भक्तिभाव से पाठ करेगा, वह षट्स्थल के ज्ञान से सम्पन्न हो जायगा। अन्त में शास्त्र की गोपनीयता पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है और इसी के साथ यह दस पटल वाला सूक्ष्मागम के उत्तर भाग का क्रियापाद समाप्त होता है।

इस प्रकार हमने यहाँ सूक्ष्मागम के संक्षिप्त परिचय के व्याज से इस आगम में वर्णित सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालने का और टिप्पणियों में तुलनात्मक सामग्री देने तथा विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। विज्ञ पाठक यहाँ की अच्छाई को ग्रहण करने और त्रुटियों पर हमारा ध्यान आकृष्ट कराने का अनुग्रह अवश्य करेंगे।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाडी मठ, वाराणसी
महाशिवरात्रि, संवत् २०५०

विद्वद्वशंवद
व्रजवल्लभ द्विवेदी
निदेशक



२६. हमें बताया गया है कि कन्नड़ भाषा में नास्तिकों के लिये यह शब्द प्रयुक्त है। प्रस्तुत वर्णन से भी ऐसी ही ध्वनि निकलती है। शैवागमों और पुराणों में शिप्रजनों से संबद्ध कथा अवश्य मिलनी चाहिये।

२७. भगवद्गीता में अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्ण से इस तरह की क्षमाप्रार्थना करते हैं— "सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।....तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥" (११।४१-४२)।

विषयानुक्रमणिका

ग्रन्थभागः



सूक्ष्मागमे उत्तरभागे

क्रियापादः

श्रीजगद्गुरवः पञ्चाचार्याः प्रसीदन्तु

प्रथमः पटलः

कैलाशवर्णनम्

श्रीमत्कैलासशिखरे नानाद्रुमविराजिते।
नानापक्षिसमाकीर्णे नानामृगसमाकुले॥१॥
सिद्धचारणगन्धर्वयक्षरक्षोगणैर्वृते।
ब्रह्मादिभिर्देवगणैरिन्द्राद्यैर्लोकपालकैः॥२॥
योगिभिः सनकाद्यैश्च मुनिवर्यैः शुकादिभिः।
नन्द्यादिप्रमथानां च गणैः संसेविते शुभे॥३॥
सारूप्यादिपदं प्राप्तैर्महाभागैर्विराजिते।
नानारत्नमये दिव्ये सुखैकफलदायके॥४॥
विभ्राजते महाशृङ्गं सौवर्णं दिव्यमन्दिरम्।
रत्नस्तम्भसहस्राढये तत्रस्थे मणिमण्टपे॥५॥

नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित, नाना प्रकार के पक्षियों से और नाना प्रकार के मृगों से सुशोभित श्री सम्पन्न कैलाश पर्वत के शिखर पर॥१॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस गणों से, ब्रह्मा इत्यादि देवगणों से और इन्द्र आदि [१]लोकपालों से परिवृत॥२॥ सनक आदि योगीगण, शुक आदि मुनिगण और नन्दी आदि प्रमथगणों से सेवित अत एव शुभ॥३॥ सारूप्य[२] आदि पदवी को प्राप्त हुए महान् भाग्यशाली [३]सिद्धों से सुशोभित, नाना प्रकार के रत्नों से भरे पूरे, दिव्य, एकमात्र सुख रूपी फल को देने वाले॥४॥ ऐसे कैलाश पर्वत के मस्तक पर महान् शिखर से सुशोभित सुवर्णनिर्मित दिव्य मन्दिर बना हुआ है। यहाँ रत्न से निर्मित एक हजार स्तम्भ वाला मणिमण्टप है॥५॥

---

१. इन्द्र आदि आठ लोकपालों के नाम आगे दसवें पटल के २७ वें श्लोक में देखिये।

२. सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य नामक चतुर्विध मुक्तिदशाओं का वर्णन प्रायः आगम, पुराण आदि में सर्वत्र मिलता है। सार्ष्टि नामक मुक्तिदशा का भी कहीं कहीं उल्लेख हुआ है। देखिये — शिवपुराण की प्रथम विद्येश्वर संहिता (१८।१९-२३)।

३. "मुक्तात्मानोऽपि शिवाः किन्त्वेते यत्प्रसादतो मुक्ताः। सोऽनादिमुक्त एको विज्ञेयः पञ्चमन्त्रतनुः॥" (श्लो.६) भोजराज के तत्त्वप्रकाश के इस श्लोक में मुक्तात्मा (सिद्ध) और शिव के भेद को स्पष्ट किया गया है। अवधूत सिद्ध का कहना है कि शिव का सिद्धों के प्रति अधिकार समाप्त हो जाता है, किन्तु जो अभी मुक्त नहीं हुए हैं, उनके प्रति शिव का अधिकार समाप्त नहीं होता। देखिये — अष्टप्रकरण, पृ. २८१

सिंहासने समासीनं ब्रह्मेन्द्रादिसुरैर्वृतम्।
पप्रच्छ पार्वती देवी शङ्करं लोकशङ्करम्॥६ ॥

देव्युवाच

भगवन् देवदेवेश सर्वज्ञ परमेश्वर।
त्वमेव श्रुतितन्त्राणां तत्त्वं जानासि शङ्कर॥७ ॥
त्वन्मुखाम्भोजनिष्यन्दिसूक्तिधारामृतं प्रभो।
पीत्वा श्रोत्रपुटाभ्यां तु तृप्तिर्मे नहि जायते॥८ ॥
विविधानि च तन्त्राणि श्रुतानि बहुधा मया।
तथापि चञ्चलं चित्तं बहुश्रवणकारणात्॥९ ॥
तस्मात् संगृह्य सारांशं मोक्षमार्गैककारणम्।
सम्यक् तत्त्वं विनिश्चित्य कारुण्याद्वद मे प्रभो॥१०॥

महेश्वर उवाच

सत्यमेतन्महादेवि यदुक्तं हि त्वयाऽनघे।
अनन्ता निगमाः प्रोक्ताः शास्त्राणि विविधानि च।
अमितानि पुराणानि विरुद्धानि परस्परम्॥११॥

उस मणिमण्टप में सिंहासन पर विराजमान ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं से घिरे हुए समस्त लोकों का कल्याण करने वाले भगवान् शिव से देवी पार्वती प्रश्न करती हैं॥६॥

देवी का प्रश्न—

हे समस्त देवताओं के स्वामी, सर्वज्ञ, परमेश्वर शंकर! आप ही समस्त श्रुतियों और तन्त्रों के तत्त्व को जानते हैं॥७॥ हे प्रभो! आपके मुख रूपी कमल से निकलने वाले इस सूक्तिधारा (सुभाषित) रूपी अमृत को पीकर भी मेरे कानों की तृप्ति नहीं हो पा रही है॥८॥ आपसे मैंने विविध तन्त्रों को अनेक बार सुना है, तो भी मेरा चित्त अभी चंचल ही बना हुआ है, क्योंकि इनमें नाना प्रकार की बातें सुनने को मिली हैं॥९॥ इसलिये इन सबके सारांश को इकट्ठा करके आप मुझे सुनाइये, जो कि मोक्ष मार्ग का एक मात्र कारण हो। हे प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा कर तत्त्व का सम्यक् निर्णय करते हुए मुझे समझाइये॥१०॥

महेश्वर का उत्तर—

हे निष्पाप महेश्वरि! आपने जो कुछ कहा है, वह पूरी तरह से सही है। मैंने अनन्त निगमों का, विविध शास्त्रों का, अनेक पुराणों का उपदेश किया है, जिनमें कि परस्पर विरुद्ध अनेक वचन मिलते हैं॥११॥ इसी प्रकार विविध विषयों के

आगमा बहुधा प्रोक्ता: समस्तार्थावबोधका:।
एतैरन्योन्यभिन्नैश्च ज्ञानं सम्यङ्‌ न जायते॥१२॥

सूक्ष्मतन्त्रोपदेशप्रतिज्ञा

तस्मात् सर्वार्थसंयुक्तं परमार्थावबोधकम्।
सूक्ष्मतन्त्रमहं वक्ष्ये शिवज्ञानैकसाधनम्।
समाहितेन मनसा तन्त्रं गोप्यमिदं शृणु॥१३॥

परात्परतर: शिव:

अस्ति कश्चित् स्वत: सिद्ध: सच्चिदानन्दलक्षण:।
नित्यो निरञ्जन: शुद्धो निर्मलो निरुपप्लव:॥१४॥
निर्गुणो नित्यसम्पन्नो निर्मायो निरुपाधिक:।
अकायो भक्तकायश्च परात्परतर: शिव:॥१५॥
एको रुद्र: परंज्योति: परमात्मा सनातन:।
पुरुष: शाश्वत: स्थाणुरूर्ध्वरेतास्त्रियम्बक:॥१६॥
सादाख्यपञ्चकातीतो वेदवेदान्तगोचर:।
षडध्वकर्ता देवेश: सर्वतत्त्वोपरि स्थित:॥१७॥

प्रतिपादक आगम भी नाना प्रकार के उपदिष्ट हैं। इनमें परस्पर भेद रहने से सही ज्ञान नहीं हो पाता॥१२॥

इसलिये सभी अर्थों से संयुक्त परमार्थ के अवबोधक [४]सूक्ष्मतन्त्र का मैं तुमको उपदेश करूंगा, जो कि शिव को जानने का एक मात्र साधन है। यह तन्त्र अतीव गोपनीय है। इसे तुम एकाग्र मन से सुनो॥१३॥

स्वत:सिद्ध, सत् चित् आनन्द स्वरूप नित्य निरंजन शुद्ध निर्मल सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित कोई तत्त्व सृष्टि से पहले था॥१४॥ यह निर्गुण, नित्य सम्पन्न, माया रहित, उपाधि रहित, शरीर से रहित अथ च भक्तों के लिये शरीर धारण करने वाला, पर से भी परतर शिव तत्त्व है॥१५॥ यह अकेला रुद्र परम ज्योति:स्वरूप, परमात्मा, सनातन, शाश्वत पुरुष, स्थाणु ऊर्ध्वरेता और तीन नेत्र वाला है॥१६॥ आगे (१.२५) बताये गये सादाख्यपंचक से अतीत, वेद और वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, [५]षडध्व का रचयिता यह देवेश सभी तत्त्वों के ऊपर स्थित है॥१७॥ इस प्रकार के स्वरूप वाला

---

४. अट्ठाईस शैवागमों में सूक्ष्मागम का स्थान सातवाँ है। सूक्ष्मागम ही यहाँ सूक्ष्मतन्त्र के नाम से निर्दिष्ट है। यह उसका उत्तर भाग है।

५. वर्ण, पद, मन्त्र, कला, तत्त्व और भुवन — ये षडध्व के नाम से शैवागमों में प्रसिद्ध हैं। इनका विशेष विवरण तन्त्रालोक के ६-१२ आह्निकों में देखा जा सकता है। शैवदीक्षा-विधि में भी षडध्वशुद्धि और षडध्वन्यास वर्णित है। इसके लिये वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्म-पद्धति (पृ. ८०-८३) देखिये।

एवंरूप: परात्मा हि पशुपाशविमोचक:।
शम्भु: कदाचिन्निजया प्रकृत्या लीलया स्वयम्॥१८॥
सृष्ट्यर्थं सर्वतत्त्वानां जगदुत्पत्तिकारणम्।
योगिनामुपकाराय स्वेच्छयाऽचिन्तयच्छिव:॥१९॥

पञ्च शक्तय:

ध्यायमानात् ततो देवि पराशक्तिरजायत।
आदिशक्तिस्ततो जाता पराशक्त्यंशभेदत:॥२०॥
आदिशक्त्यंशत: साक्षादिच्छाशक्तिरजायत।
इच्छाशक्त्यंशभेदेन ज्ञानशक्तिरजायत॥२१॥
ज्ञानशक्त्यंशभेदेन क्रियाशक्तिरजायत।
एकैव पञ्चधा भिन्ना निर्मला शिवचिन्तया॥२२॥

पञ्चविधं सादाख्यं तत्त्वम्

शिवस्तु सच्चिदानन्दलक्षण: परमेश्वर:।
पूज्यपूजकभावेन निर्गुण: सगुणोऽभवत्॥
स च पञ्चविध: प्रोक्त: सादाख्यादिप्रभेदत:॥२३॥
पराशक्त्यादिशक्त्योश्च बिन्दुनादस्वरूपयो:।
मेलने शिवतत्त्वस्य सादाख्यं समजायत॥२४॥

यह परमात्मा पशु को पापों से मुक्त करने वाला है। यह शिव अपनी लीलास्वरूप प्रकृति से कभी स्वयं लीला करने लगता है॥१८॥ उस समय वह शिव स्वेच्छा से योगियों का उपकार करने के प्रयोजन से सभी तत्त्वों की उत्पत्ति के कारण की चिन्ता करने लगा॥१९॥

उस समय इस चिन्ता में निमग्न शिव से परा शक्ति पैदा होती है और उस परा शक्ति के एक अंश से ही आदि शक्ति उत्पन्न होती है॥२०॥ आदि शक्ति के अंश से साक्षात् इच्छा शक्ति उत्पन्न हुई और इच्छा शक्ति के अंश से ज्ञान शक्ति पैदा हुई॥२१॥ ज्ञान शक्ति के एक अंश से क्रिया शक्ति पैदा हुई। इस तरह से एक ही निर्मल शक्ति शिव के ध्यान से पाँच रूपों में विभक्त हो गई॥२२॥

सत् चित् आनन्द लक्षण परमेश्वर भगवान् शिव ही पूज्य और पूजक के भेद से सगुण निर्गुण स्वरूप धारण कर लेते हैं। यह सगुण स्वरूप सादाख्य आदि के भेद से पाँच प्रकार का हो जाता है॥२३॥ शिव तत्त्व की बिन्दु और नाद स्वरूप वाली परा शक्ति और आदि शक्ति के मिलन से सादाख्य तत्त्व उत्पन्न होता है॥२४॥

प्रथमं शिवसादाख्यममूर्तं तु ततोऽभवत्।
ततः समूर्तसादाख्यं ततो वै कर्तृनामकम्।
कर्मसादाख्यमपरं पञ्चसादाख्यमीरितम्॥२५॥
सदाशिवेशब्रह्मेश-ईश्वरेशानभेदतः ।
मूर्तयोः वै मता देवि सादाख्यापरनामकाः॥२६॥

त्रिविधं शिवतत्त्वम्

तदेतत् त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं परं तथा।
लिङ्गमूर्त्यादिभेदेन दृश्यं स्थूलमिति स्मृतम्।
योगिभिर्ज्ञानदृष्ट्या यद्ध्येयं तत् सूक्ष्ममुच्यते॥२७॥
नित्यं सत्यं चिदानन्दमव्ययं केवलं सुखम्।
यद्रूपं तत्परं ज्ञेयं भक्तैः षट्स्थलवर्त्मभिः॥२८॥

सगुणनिर्गुणभेदेन द्विविधम्

निर्गुणः शिव इत्युक्तः सगुणस्तु सदाशिवः।
सादाख्यश्च स एवोक्तो ध्यानपूजादिकारणम्॥२९॥
देही निर्गुण इत्युक्तो देहः सगुण उच्यते।
एवमेव विजानीयाद् द्वयोर्भेदो न विद्यते॥३०॥

यह सादाख्य तत्त्व पाँच प्रकार का है— प्रथम शिवसादाख्य, दूसरा अमूर्तसादाख्य, तीसरा मूर्तसादाख्य, चौथा कर्तृसादाख्य और पाँचवाँ कर्मसादाख्य। इन पांच सादाख्यों की क्रमशः उत्पत्ति होती है॥२५॥ सदाशिव, ईश, ब्रह्मा, ईश्वर और ईशान के नाम से ये ही पाँच मूर्तियां पांच सादाख्य तत्त्वों के नाम से कही गई हैं॥२६॥

पुनः यह शिवतत्त्व स्थूल, सूक्ष्म और पर के भेद से त्रिविध माना गया है। लिङ्ग, मूर्ति आदि के भेद से इसका दृश्य स्वरूप स्थूल माना गया है। योगी ज्ञान की दृष्टि से जिसका ध्यान करते हैं, वह उसका सूक्ष्म रूप है॥२७॥ नित्य, सत्य, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप, कभी व्यय (नष्ट) न होने वाला, केवल, सुखमय जो स्वरूप है, उसे षट्स्थल मार्ग का अनुसरण करने वाले 'पर' कहते हैं॥२८॥

निर्गुण तत्त्व का नाम शिव और सगुण का नाम सदाशिव है। सदाशिव को ही सादाख्य तत्त्व भी कहते हैं। ध्यान-पूजा आदि उसी सादाख्य तत्त्व की की जाती है॥२९॥ शरीर में रहने वाली आत्मा निर्गुण और देह सगुण कहा जाता है, उसी तरह से शिव और सादाख्य तत्त्व को भी समझना चाहिये। इन दोनों में कोई भेद नहीं है॥३०॥

नादरूप: शिव: प्रोक्तो बिन्दुरूप: सदाशिव:।
नादबिन्दुयुतं रूपं ध्यानपूजादिकारणम्॥३१॥
ततश्च पञ्चसादाख्यभेदं शृणु वरानने।
एतत्सर्वं तत्स्वरूपं दृश्यादृश्यं विशेषत:॥३२॥

शिवसादाख्यलक्षणम्

शान्त्यतीतकलायुक्तं पराशक्तिसमुद्भवम्।
प्रसन्नं सूक्ष्मरूपं च विद्युत्प्रभमनूपमम्।
शुद्धं च शिवसादाख्यं सर्वतत्त्वालयं परम्॥३३॥

अमूर्तसादाख्यलक्षणम्

शान्त्याख्यकलया युक्तमादिशक्तिसमुद्भवम्।
अमूर्तं केवलं लिङ्गं भानुकोटिप्रकाशकम्॥३४॥
तेज:स्तम्भायमानं स्यादमूर्तत्वादगोचरम्।
ज्योतिर्लिङ्गं परं साक्षाद् ध्येयं शुद्धेन चेतसा॥३५॥

शिव नादस्वरूप और सदाशिव बिन्दुरूप है। नाद और बिन्दु से युक्त स्वरूप ही ध्यान, पूजा आदि के लिये उपयोगी माना गया है॥३१॥ हे सुन्दर मुख वाली देवि! इसी से पाँच सादाख्य स्वरूपों की उत्पत्ति होती है, उसे तुम सुनो। इस जगत् में सब कुछ विशेष रूप से दृश्य और अदृश्य पदार्थ उसी का स्वरूप है॥३२॥

परा शक्ति से उत्पन्न शान्त्यतीत कला से युक्त प्रसन्न, सूक्ष्म रूप, बिजली के समान, उपमा से रहित शुद्ध स्वरूप शिवसादाख्य कहलाता है। यह सभी तत्त्वों का श्रेष्ठ आश्रय है॥३३॥

आदि शक्ति से उत्पन्न शान्ति कला से युक्त तत्त्व अमूर्तसादाख्य स्वरूप है। यह केवल लिंगस्वरूप, करोड़ों सूर्यों का प्रकाशक, प्रकाश के स्तम्भ के समान है। अमूर्त होने से यह अगोचर है, अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं है। शिवभक्त को शुद्ध चित्त से इस श्रेष्ठ स्वरूप का ज्योतिर्लिंग के रूप में ध्यान करना चाहिये॥३४-३५॥

मूर्तसादाख्यलक्षणम्

विद्याकलासमायुक्तमिच्छाशक्तिसमुद्भवम् ।
मूर्तं मूर्तिधरं दिव्यं ज्वलदग्निसमप्रभम् ॥३६॥
लिङ्गरूपं चैकवक्त्रं नेत्रत्रयविराजितम् ।
सर्वावयवसम्पूर्णमेवं ध्येयं शुभावहम् ॥३७॥

कर्तृसादाख्यलक्षणम्

प्रतिष्ठाकलया युक्तं ज्ञानशक्तिसमुद्भवम् ।
दिव्यलिङ्गं महादीर्घं स्फटिकाभं सदोज्ज्वलम् ॥३८॥
तन्मध्ये संस्थिता मूर्तिरीश्वरः सर्वकारणम् ।
चतुःशीर्षं चतुर्वक्त्रं चतुर्वर्णसुशोभितम् ॥३९॥
नेत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं श्रोत्रैरष्टभिरश्चितम् ।
अष्टभिर्बाहुभिर्युक्तं पादद्वयविराजितम् ॥४०॥
त्रिशूलं परशुं चैव खड्गं चाभयमेव च ।
दीप्यमानं स्वतेजोभिर्दधतं दक्षिणैः करैः ॥४१॥
पाशं नागं तथा घण्टां वरदं वामतः प्रिये ।
हस्तैश्चतुर्भिर्दधतं सर्वावयवसुन्दरम् ।
एवं तदैश्वरं रूपं लिङ्गं कर्त्रभिधानकम् ॥४२॥

इच्छा शक्ति से उत्पन्न विद्या कला से युक्त मूर्तसादाख्य तत्त्व कहलाता है। यह दिव्य मूर्ति का स्वरूप धारण कर प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाश वाला लिंगस्वरूप है। एक मुख और तीन नेत्र से विराजित यह स्वरूप अवयवों से सम्पूर्ण है। ध्यान करने से यह सबका कल्याणकारी है॥३६-३७॥

ज्ञान शक्ति से उत्पन्न प्रतिष्ठा कला से युक्त कर्तृसादाख्य तत्त्व दिव्य लिंगमय महान् आकार का, स्फटिक की आभा वाला सदा प्रकाशित है। इसके बीच में ईश्वर मूर्ति विद्यमान है, जो कि सारे जगत् का कारण है। यह स्वरूप चार सिर, चार मुख और चार वर्णों से सुशोभित है॥३८-३९॥ इसके बारह नेत्र हैं, आठ कान, आठ बाहु और दो पैरों से यह स्वरूप विराजमान है॥४०॥ त्रिशूल, परशु, खड्ग, अभयमुद्रा से युक्त चार दाहिने हाथों से इसका तेजस्वी स्वरूप भासित होता है॥४१॥ हे प्रिये! पाश, नाग, घण्टा और वरद मुद्रा से इसके चार वाम हस्त सुशोभित हैं। सभी सुन्दर अवयवों से सम्पन्न लिंग तत्त्व स्वरूप यह ईश्वर ही कर्तृसादाख्य कहलाता है॥४२॥

कर्मसादाख्यलक्षणम्

निवृत्तिकलया युक्तं क्रियाशक्तिसमुद्भवम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं लिङ्गं सृष्ट्यादिकारणम्॥४३॥
सर्वमन्त्रैकनिलयं पूज्यं देवासुरादिभिः।
क्रियाविशेषतत्त्वाख्यं कर्मरूपमुदीरितम्॥४४॥
कुन्देन्दुस्फटिकाभासं जटाजूटविराजितम्।
शिरोभिः पञ्चभिर्युक्तं पञ्चाननसमन्वितम्॥४५॥
प्रत्याननं विशेषेण त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम्।
दशभिर्बाहुभिर्युक्तं पादद्वयसुशोभितम्॥४६॥
पद्मसंस्थं महादेवं सर्वाभरणभूषितम्।
दिव्यवस्त्रपरीधानं दिव्यायुधधरं शुभम्॥४७॥
शूलं च परशुं चैव खड्गं वज्राभये तथा।
दधतं दक्षिणैर्हस्तैस्तथा वामकरैः शुभैः।
नागं पाशं चाङ्कुशं च घण्टां वह्निं तथैव च॥४८॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं चतुर्वर्गफलप्रदम्।
नानारूपधरं देवं विविधैर्लक्षणैर्युतम्॥४९॥

क्रिया शक्ति से समुत्पन्न, निवृत्ति कला से युक्त नाद और बिन्दु से मिला हुआ लिंग तत्त्व सृष्टि आदि का कारण है। यह सभी मन्त्रों का निवासस्थान है, अर्थात् सारे मन्त्र इसी स्वरूप में रहते हैं। देव, असुर आदि भी इसकी पूजा करते हैं। यह कर्मसादाख्य स्वरूप विशेष रूप से सारी क्रियाओं का आधार माना गया है॥४३-४४॥ यह कुन्द पुष्प और स्फटिक के समान आभा वाला स्वरूप जटाजूट से विराजित, पाँच सिर और पाँच मुख से समन्वित है॥४५॥ इसका प्रत्येक मुख तीन नेत्रों से और चन्द्र कला से सुशोभित है। यह स्वरूप दस बाहु और दो पैरों वाला है॥४६॥ कमल पर विराजमान, सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित यह महादेव दिव्य वस्त्र पहिने हुए और सबका कल्याण करने वाले दिव्य आयुधों से सुशोभित हैं॥४७॥ इनके दाहिने हाथों में शूल, परशु, खड्ग, वज्र और अभय मुद्रा और बायें हाथों में कल्याणकारी नाग, पाश, अंकुश, घण्टा और वह्नि सुशोभित है॥४८॥ इस प्रकार सभी लक्षणों से संयुक्त, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्विध पुरुषार्थों को फल के रूप में देने वाले, नाना प्रकार के रूप धारण करने वाले, विविध लक्षणों से युक्त महादेव॥४९॥

अनेकलीलानिलयं कल्पितस्थानवाहनम्।
नृत्तगीतविनोदाढ्यं देवदेवं महेश्वरम्॥५०॥
जटाजूटसमायुक्तं त्र्यम्बकं नीललोहितम्।
पद्मासनसमासीनं ध्यायेदेवं महेश्वरम्॥५१॥

पञ्चविंशतिलीलानामानि

आदौ तस्य स्वयं लीलाः पञ्चविंशतिभेदतः।
सृष्टिस्थित्यन्तकरणास्ताः शृणु क्रमशोऽधुना॥५२॥
शशिचूडमुमाकान्तं वृषारूढं च ताण्डवम्।
वैवाहं च तथा भिक्षाटनं कामाङ्गनाशनम्॥५३॥
कालसंहरणं चैव पुरत्रयविनाशनम्।
जलन्धरवधं चैव ब्रह्मदर्पनिवारणम्॥५४॥
वीरभद्रावतरणं हरिध्वंसमतः परम्।
अर्धनारीश्वरं चैव किराताकारधारणम्॥५५॥
कङ्कालधारणं चैव चण्डेशानुग्रहं तथा।
विषापहरणं चैव चक्रदानं ततः परम्॥५६॥
विघ्नेशवरदानं च सोमास्कन्दं तथैव च।
एकपादं ततो ज्ञेयं सुखावहमतः परम्॥५७॥

जो कि नाना प्रकार की लीलाओं को करते रहते हैं, भक्त के द्वारा कल्पित स्थान पर बुलाने पर पहुँच जाते हैं, नृत्य गीत आदि विनोदों में जिनकी गहरी रुचि है, उन देवों के देव महादेव का॥५०॥ जो कि जटाजूट धारण किये हुए हैं, तीन नेत्र वाले, नीललोहित स्वरूप वाले, पद्मासन पर समासीन हैं, ऐसे महेश्वर का ध्यान शिवभक्तों को करना चाहिये॥५१॥

यहाँ पहले तुम उनके द्वारा की गई पचीस प्रकार की लीलाओं को सुनो। इन लीलाओं को सुनने से भगवान् शिव की सृष्टि, स्थिति और संहार की सामर्थ्य की भलीभाँति प्रतीति हो जाती है॥५२॥ इन पचीस लीलाओं के नाम अथवा स्वरूप इस प्रकार हैं— (१) शशिचूड लीला, (२) उमाकान्त लीला, (३) वृषारूढ लीला, (४) ताण्डव लीला, (५) वैवाह लीला, (६) भिक्षाटन लीला, (७) कामसंहार लीला, (८) कालसंहार लीला, (९) त्रिपुरसंहार लीला, (१०) जलन्धरवध लीला, (११) ब्रह्मदर्पनिवारण लीला, (१२) वीरभद्रावतरण लीला, (१३) हरिध्वंस लीला, (१४) अर्धनारीश्वर लीला, (१५) किराताकारधारण लीला, (१६) कंकालधारण लीला, (१७) चण्डेशानुग्रह लीला, (१८) विषपान लीला, (१९) चक्रदान लीला, (२०) विघ्नेशवरदान लीला, (२१) सोमास्कन्द लीला, (२२) एकपाद लीला, (२३) सुखावह लीला,॥५३-५७॥

दक्षिणामूर्तिरूपं च लिङ्गोद्भवमतः परम्।
पञ्चविंशतिलीलाभिर्देवदेवो महेश्वरः।
सृष्टिस्थितिलयाद्यैश्च विहारैः क्रीडतेऽनिशम्॥५८॥

शिव एव सदा ध्येयः

अयमेव सदा ध्येयो यमाद्यष्टाङ्गसाधकैः।
पूज्यः सदा भक्तिनिष्ठैर्भवाम्बुधितितीर्षुभिः।
मन्तव्यो मननासक्तैर्मुमुक्षुभिरहर्निशम्॥५९॥
किमत्र बहुनोक्तेन स एव परमेश्वरः।
ततोऽधिकस्तत्समो वा देवो नास्ति वरानने॥६०॥
एवमुक्तं समासेन तत्त्वं सिद्धान्तगोचरम्।
तव प्रीत्या महादेवि किं पुनः परिपृच्छसि॥६१॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे सदाशिवस्वरूपनिरूपणं नाम प्रथमः पटलः॥१॥

---

(२४) दक्षिणामूर्ति लीला और (२५) लिंगोद्भव लीला। इन पचीस लीलाओं से यह देवदेव महादेव सृष्टि, स्थिति और संहार का चक्र चलाते हुए विहार करते हैं, रात-दिन क्रीडा करते रहते हैं॥५८॥ साधक को चाहिये कि वह यम, नियम[६] आदि योग के आठ अंगों से शिव का सदा ध्यान करें। भवसागर को पार करने का इच्छुक भक्तिनिष्ठ व्यक्ति सदा इनका ही पूजन करे और मनन में आसक्त व्यक्ति भी रात-दिन इन्हीं का मनन करे॥५९॥ हे वरानने! यहाँ बहुत कहने का क्या प्रयोजन है, अर्थात् कुछ भी नहीं। इतना मात्र समझ लेना चाहिये कि यह भगवान् शिव ही परमेश्वर हैं। इनसे अधिक अथवा इनके बराबर भी दूसरा कोई देवता नहीं है॥६०॥ हे महादेवि! इस तरह से मैंने तुम्हारी प्रीति के लिये शास्त्रों में वर्णित तत्त्व को संक्षेप में बता दिया है। अब और तुम क्या पूँछती हो॥६१॥

इस प्रकार श्री सूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह सदाशिव के स्वरूप का निरूपण करने वाला पहला पटल समाप्त हुआ॥१॥



---

६. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि — ये आठ योग के अंग है। देखिये — पातंजल योगसूत्र (२।२९)।

द्वितीयः पटलः

देव्युवाच

देवदेव विरूपाक्ष सर्वज्ञ करुणानिधे।
अहमेव महादेवो मत्तोऽन्यो नहि विद्यते॥१॥
इति सर्वेषु तन्त्रेषु पूर्वमुक्तं त्वयाऽनघ।
महेश्वर इति प्रोक्त इदानीं जगतांप्रभुः॥२॥
को वा देवः स विश्वेशस्तस्य वै केन हेतुना।
रूपाणीमानि चित्राणि सञ्जातानि महात्मनः।
एतत्सर्वं समासेन श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥३॥

महेश्वर उवाच

अथोच्यते महादेवि यत्त्वया परिशङ्कितम्।
संक्षिप्य कथ्यते सर्वं सादरं श्रूयतां प्रिये॥४॥

निर्गुणः सगुणश्च महेश्वरः

यो वै महेश्वर इति प्रोक्तः सर्वजगत्प्रभुः।
निर्गुणः सगुणश्चैव स एवाहं न संशयः॥५॥

देवी का प्रश्न—

हे देवताओं के भी देव, विरूपाक्षनामधारी, करुणा के सागर, सर्वज्ञ महादेव! आपने तो सभी तन्त्रों में पहले यह कहा था कि मैं ही महादेव हूँ। मुझसे भिन्न यहाँ कोई देवता नहीं है। हे अनघ! सारे जगत् के स्वामी के रूप में अब आप महेश्वर को बता रहे हैं॥१-२॥ इस पर मेरी जिज्ञासा है कि वह महेश्वर कौन है और किस लिये उस महात्मा के ये नाना प्रकार के विचित्र रूप हो गये? यह सब मैं आपसे संक्षेप में यथार्थ रूप में सुनना चाहती हूँ॥३॥

महेश्वर का उत्तर—

हे प्रिये महादेवि! मेरे सामने तुमने जो शंका उपस्थित की है, उसका अब मैं तुमको संक्षेप में उत्तर दे रहा हूँ। उसको तुम आदर पूर्वक सुनो॥४॥

महेश्वर के नाम से सारे जगत् के जिस स्वामी का यहाँ निर्गुण और सगुण रूप में वर्णन किया गया है, वह मैं ही हूँ, इसमें कोई संशय नहीं रखना चाहिये॥५॥

रूपाणि सन्ति बहुशो देवस्य परमात्मन:।
तथाप्येतानि मुख्यानि तेषां कारणमुच्यते॥६॥

१. शशिचूडलीला

व्योमकेश: शिव: प्रोक्तश्चन्द्रो व्योमाश्रित: सदा।
चन्द्रधारणमेतस्य नियतं खलु भामिनि॥७॥
पुरा कल्पान्तरे चन्द्रोऽप्रीतो दक्षसुतासु च।
तदा दक्षेण चन्द्रस्तु शप्तो वै रोहिणीकृते॥८॥
शापग्रस्तस्ततश्चन्द्रस्तपस्तेपेऽतिदारुणम्।
शङ्करस्तपसा तस्य सन्तुष्ट: प्राह चादरात्॥९॥
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मि निशापते।
शापभीर्माऽस्तु ते लोकं प्रकाशय पुन: करै:॥१०॥
कृतार्थोऽस्मि महादेव दर्शनादेव ते प्रभो।
वरमन्यं न याचे मां भूषणत्वेन योजय॥११॥
एवं सम्प्रार्थितं चन्द्रं दधार शिरसा शिव:।
अनेन कारणेनासौ सोमधारीति गीयते॥१२॥

परमात्मा भगवान् शिव के तो अनेक रूप हैं, किन्तु उनमें पूर्व वर्णित पचीस स्वरूप मुख्य हैं। उनका कारण मैं तुमको बता रहा हूँ॥६॥

हे भामिनि! शिव को व्योमकेश कहा गया है। चन्द्रमा सदा व्योम (आकाश) में विचरण करता है और भगवान् शिव उस चन्द्रमा को सदा धारण किये रहते हैं॥७॥ पुरानी कथा है कि कल्पान्तर में चन्द्रमा दक्ष की पुत्रियों पर रुष्ट हो गया था, जो कि उसकी पत्नियाँ थीं। रोहिणी पर ज्यादा स्नेह रखने पर दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दे दिया॥८॥ तब शाप से ग्रस्त होकर चन्द्रमा ने अत्यन्त कठिन तपस्या की। उसकी तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और आदरपूर्वक उससे बोले॥९॥ हे निशा(रात्रि) के पति चन्द्रमा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर माँगो। मैं शिव तुमको वर दूँगा। शाप का भय अब तुम मत करो और पहले के जैसे ही तुम पुन: अपनी किरणों से उस जगत् को प्रकाशित करो॥१०॥ महादेव के ऐसा कहने पर चन्द्रमा ने प्रार्थना की कि हे महादेव! मैं तो आपका दर्शन करके ही कृतार्थ हो गया हूँ। मैं आपसे कोई दूसरा वर नहीं माँगता। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि आप भूषण के रूप में मुझे धारण कीजिये॥११॥ इस प्रकार चन्द्रमा की प्रार्थना पर भगवान् शिव ने उसको अपने शिर, अर्थात् ललाट पर धारण कर लिया। इसी लिये ये सोमधारी के नाम से प्रसिद्ध हैं॥१२॥

२. उमाकान्तलीला

सृष्ट्यर्थं जगतां देवो निष्कलः सकलोऽभवत्।
उमासहायतां प्राप्तस्तेन सोमः शिवः स्मृतः ॥१३॥
स शिवोऽहमुमा शक्तिस्त्वमेव परमेश्वरि।
त्वया सहाविनाभावात् सोमं मां परिचक्षते ॥१४॥

३. वृषभारूढलीला

पुरा कल्पावसाने हि सर्वं संहृत्य शङ्करः।
कृत्वोमां साक्षिणीं तस्मिन्नेक एव चचार ह ॥१५॥
दृष्ट्वा धर्मस्तथाभूतं सर्वसंहारकारणम्।
नाशयेन्मामिति भयात् तं रुद्रं शरणं गतः ॥१६॥
अनुगृह्य तु तं देवो वाहनत्वे नियुक्तवान्।
तस्य नित्यत्वमाज्ञाप्य तेनाहं वृषवाहनः ॥१७॥

४. ताण्डवलीला

कल्पान्ते संहृतं कृत्वा जगत् स्थावरजङ्गमम्।
ननर्त च महादेवः सुचिरं नृत्यलीलया।
तेन ताण्डवमूर्तित्वं जातं देवस्य शूलिनः ॥१८॥

सारे जगत् की सृष्टि के लिये भगवान् शिव निष्कल रूप को छोड़कर सकल स्वरूप धारण कर लेते हैं। इस कार्य में वे उमा (पार्वती) की सहायता लेते हैं, अतः 'उमया सहितः सोमः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार शिव को सोम कहा जाता है॥१३॥ हे परमेश्वरि! वह शिव तो मैं स्वयं हूँ और उमा शक्ति तुम हो। तुम्हारे बिना मैं कभी नहीं रहता, इसीलिये मुझे सोम कहा जाता है॥१४॥

पुराने समय की बात है कि कल्प की समाप्ति पर भगवान् शिव ने सारे जगत् का संहार कर दिया। उस समय एकमात्र देवी को ही साक्षिणी बताकर वे अकेले विचरण करने लगे॥१५॥ इस प्रकार सबका संहार हुआ देखकर धर्म भयभीत हो गया और कदाचित् यह मेरा भी नाश न कर दें, उस भय से अपने बचाव के लिये वह सभी का संहार कर देने वाले भगवान् रुद्र की शरण में चला गया॥१६॥ उस पर अनुग्रह करके भगवान् शिव ने धर्म को सदा सदा के लिये अपना वाहन बना लिया। इसलिये मैं वृषवाहन हूँ॥१७॥

कल्प की समाप्ति कर सारे स्थावर-जंगम जगत् का संहार कर महादेव बहुत लम्बे समय पर नृत्यलीला करते हुए नाचते रहे। इसी से भगवान् शूलधारी शिव की ताण्डव मूर्ति का आविर्भाव हुआ॥१८॥

५. वैवाहलीला

पुरा लोकहितार्थाय उमाया: परमेश्वर: ।
हिमवद्दुहितुश्चक्रे पाणिग्रहणमादरात् ।
तया च लीलया लोके वैवाहीत्युच्यते शिव: ॥१९॥

६. भिक्षाटनलीला

पुरा कल्पान्तरे ब्रह्मा मायया परिमोहित: ।
अहमेव परंब्रह्म मत्तोऽन्यो नहि विद्यते ॥२०॥
इत्याद्यथर्ववाक्यानि जजल्पाऽहङ्कृतो विधि: ।
तं दृष्ट्वा शङ्कर: क्रुद्धो नखाग्रैरच्छिनच्छिर: ॥२१॥
शिरसस्तरसा तस्मात् प्रसस्रे रुधिरं बहु ।
तेनैवाजकपालेन धृत्वा तद्रुधिरं पुन: ॥२२॥
ललाटशिखिना चैतच्छोषयित्वा तत: शिव: ।
तद्दाहशमनार्थं वै भिक्षाटनमथाऽकरोत् ।
ततो वै परमेशस्य लीला भिक्षाटनं गता ॥२३॥

७. कामसंहारलीला

पुरा शक्त्या विरहितो ज्ञाननिष्ठोऽम्बिकापति: ।
तपश्चचार तत्काले देवै: सम्प्रेषित: स्मर: ॥२४॥

पुराने समय में लोक के कल्याण के लिये परमेश्वर ने हिमालय की पुत्री उमा से आदर पूर्वक विवाह किया। इसी लीला के कारण भगवान् शिव को 'वैवाही' कहा जाता है ॥१९॥

पुराने काल में कल्पान्तर में ब्रह्मा माया से मोहित होकर समझ बैठे कि मैं ही परब्रह्म हूँ। मुझ से भिन्न दूसरा कोई यहाँ नहीं है ॥२०॥ ऊपर के श्लोक के उत्तरार्ध में उद्धृत अथर्ववेद के वाक्यों को बोलते हुए ब्रह्मा को अहंकार से ग्रस्त देख कर भगवान् शिव क्रुद्ध हो गये और उन्होनें अपने नखों से ब्रह्मा का सिर काट डाला ॥२१॥ ब्रह्मा के उस सिर के कट जाने से तेजी से जब रुधिर बहने लगा, तो उस समय ब्रह्मा के शिर का कपालपात्र बना कर फिर उसमें सारे रुधिर को भर लिया ॥२२॥ भगवान् शिव ने तब अपने ललाट में स्थित अग्नि रूपी नेत्र से कपाल में स्थित उस रक्त को सुखा डाला और उससे उत्पन्न हुए ताप की शान्ति के लिये, अर्थात् ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति के लिये भिक्षाटन करने लगे। यही भगवान् शिव की भिक्षाटन लीला है ॥२३॥

पुराने समय की बात है कि जब शिव शक्ति (सती) से वियुक्त हो गये, तो अम्बिका के पति ज्ञानी शिव तप करने लगे। उस समय देवताओं ने कामदेव को उनके पास भेजा ॥२४॥

आगत्य तपसो विघ्नमारेभे पुष्पसायकः।
तं दृष्ट्वा कुपितो देवो ललाटाग्निकणेन वै।
ददाह तेन लोकेऽभूत् कामारिरिति शङ्करः ॥२५॥

८. कालसंहारलीला

पुरा मृकण्डुतनयः स्वकीयायुःक्षयाद्भयात्।
सर्वदेवान् परित्यज्य जगाम शरणं शिवम् ॥२६॥
अन्तकस्तमथो हन्तुमाजगामातिभीषणः।
कर्णमाबध्य पाशेन मार्कण्डेयस्य धीमतः।
चकर्ष किल तत्कालं देवः प्रत्यक्षतां गतः ॥२७॥
शिक्षयित्वाऽन्तकं क्रूरं मार्कण्डेयमपालयत्।
कालारिरिति विख्यातो लोके तल्लीलया शिवः ॥२८॥

९. त्रिपुरसंहारलीला

त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽऽसीदतिदारुणः।
मायया निर्मितं तस्य विषमं च पुरत्रयम् ॥२९॥

पुष्पों के बाण वाला कामदेव वहाँ आकर उनकी तपस्या में विघ्न डालने लगा। उस कामदेव को ऐसा करते हुए देखकर भगवान् शिव क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अपने ललाट स्थित नेत्र की अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया। इससे लोक में भगवान् शिव कामारि के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इसे ही कामदहन लीला कहते हैं ॥२५॥

प्राचीन काल में मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय अपनी आयु के क्षय से भयभीत होकर अन्य सारे देवताओं को छोड़कर भगवान् शिव की शरण में चले गये ॥२६॥ अत्यन्त भयानक स्वरूप वाले यमराज उसको मारने के लिये आ गये और उस बुद्धिमान् मार्कण्डेय के बालों को पाश में बाँध कर खींचने लगे। उस समय यह प्रसिद्ध है कि भगवान् शिव वहाँ तत्काल प्रकट हो गये ॥२७॥ तब उस क्रूर यम को उचित शिक्षा दे कर उन्होंने मुनि मार्कण्डेय को बचा लिया। उस लीला के कारण भगवान् शिव कालारि के नाम से लोक में विख्यात हुए ॥२८॥

प्राचीन काल में अत्यन्त निर्दयी त्रिपुर नाम का दैत्य था। उसने अपनी माया से एक दूसरे से भिन्न तीन नगर बना रखे थे ॥२९॥ उस त्रिपुर को भगवान् शिव

त्रिपुरं विष्णुबाणेन मेरुणा कार्मुकेण च।
निगमाश्वयुजा सूर्यचन्द्रचक्रवता तथा ॥३०॥
ब्रह्मसारथ्ययुक्तेन रथेन जितवान् शिवः।
त्रिपुरारीति तेनायं कथ्यते परमेश्वरः ॥३१॥

१०. जलन्धरवधलीला

पुरा जलन्धरो नाम राक्षसोऽभूत् सुदारुणः।
लोकत्रयं महादेवि बबाधे वरदर्पितः ॥३२॥
तथाविधं महादैत्यं पादाङ्गुष्ठकृतेन वै।
चक्रेणानाशयद्देवो ररक्ष च जगत्त्रयम्।
ततो हि प्रथितो लोके जलन्धरहरः शिवः ॥३३॥

११. ब्रह्मदर्पनिवारणलीला

ब्रह्मा कदाचित् कामान्धः स्वसुतामेव कामयन्।
अन्यायवर्तनेनैव मृगो भूत्वाऽन्वधावत ॥३४॥
तथाविधमजं दृष्ट्वा व्याधरूपो हरस्तदा।
विव्याध च महातीक्ष्णैस्तरसा तच्छिरः शरैः।
तस्मादजारिरित्येवमभूत् सर्वेश्वरो हरः ॥३५॥

ने विष्णु को बाण के रूप में, मेरुपर्वत को धनुष के रूप में, निगम (वेद) को अश्व के रूप में, सूर्य-चन्द्र को रथ-चक्र और ब्रह्मा को सारथि के रूप में कल्पित कर उस रथ पर बैठ कर त्रिपुर का संहार कर दिया था। इसीलिये भगवान् शिव को त्रिपुरारि कहा जाता है। यही भगवान् की त्रिपुरसंहार लीला है॥३०-३१॥

हे महादेवि ! पहले अतिनिर्दयी जलन्धर नाम का कोई राक्षस था। वह वरदान प्राप्त कर अहंकार (दर्प) में भर गया और तीनों लोकों को बाधा (कष्ट) पहुँचाने लगा॥३२॥ इस अतिनिर्दयी महादैत्य का अपने पैरों के अंगूठे से भूमि पर चक्र बना कर उस चक्र से भगवान् शिव ने संहार कर दिया और तीनों लोकों की रक्षा की। तभी से लोक में जलन्धरहर के नाम से प्रसिद्ध हो गये॥३३॥

किसी समय ब्रह्मा कामान्ध हो गये और वे अपनी पुत्री को ही चाहने लगे। पुत्री सन्ध्या के अपना रूप बदल देने पर ब्रह्मा भी मृग का रूप धारण कर उसके पीछे दौड़ने लगे॥३४॥ ब्रह्मा की यह दशा देखकर भगवान् शिव ने तब व्याध (शिकारी) का रूप धारण कर लिया और बहुत धारदार बाणों से एकाएक ब्रह्मा का सिर वेध दिया। तभी से ये सबके स्वामी हर (शिव) अजारि के नाम से विख्यात हुए॥३५॥

१२. वीरभद्रावतरणलीला

दक्षः प्रजापतिः पूर्वं शिवं त्यक्त्वाऽतिमोहितः।
हयमेधेन वै विष्णुं यष्टुं समुपचक्रमे॥३६॥
वीरभद्राकृतिर्भूत्वा भद्रकालीप्रियः शिवः।
तथाविधस्य यज्ञस्य वैकल्यमकरोत् तदा।
वीरभद्रावतरणं तस्मात् प्रोक्तं पिनाकिनः॥३७॥

१३. हरिध्वंसलीला

मत्स्यकूर्मवराहादिनारसिंहादिकान् पुरा।
अवतारान् महाविष्णोः संहृत्य परमेश्वरः॥३८॥
तत्तत्कल्पेषु भूषां च तत्तदङ्गान्यकल्पयत्।
हरिध्वंसीति लोकेषु ततः ख्यातिं गतः शिवः॥३९॥

१४. अर्धनारीश्वरलीला

शरीरार्धं मया दत्तं प्रीत्या ते वरवर्णिनि।
ततो मामर्धनारीशं प्रवदन्ति विपश्चितः॥४०॥

१५. किराताकारधारणलीला

अनुग्रहाय शिष्टानां दुष्टानां निग्रहाय च।
अर्जुनस्य च रक्षार्थं किरातवपुषा शिवः।
चचार भुवि तेनायं किरातो रुद्र इत्यभूत्॥४१॥

पुराने समय की बात है कि अत्यन्त मोह में पड़े प्रजापति दक्ष शिव का परित्याग कर अश्वमेध यज्ञ से विष्णु की आराधना करने लगे॥३६॥ उस समय भद्रकाली (सती) के प्रिय भगवान् शिव ने सती के भस्म हो जाने की बात सुनकर वीरभद्र का स्वरूप धारण कर लिया और उस दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया। पिनाकधारी भगवान् शिव के वीरभद्रावतार की यही कथा है॥३७॥

पुराने समय में महाविष्णु के मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह आदि अवतारों को भगवान् शिव ने पराभूत कर दिया था॥३८॥ उन विभिन्न कल्पों में भगवान् शिव ने विष्णु के इन अवतारों के अंशों से अपने आभूषण बनाये थे। तभी से भगवान् शिव लोक में हरिध्वंसी के रूप में प्रसिद्ध हो गये॥३९॥

हे वरवर्णिनि! मैंने प्रसन्न होकर अपना आधा शरीर तुम्हें समर्पित कर दिया था। तभी से विद्वद्गण मुझे अर्धनारीश के नाम से पुकारते हैं॥४०॥

सज्जन मनुष्यों की रक्षा के लिये और दुष्ट पुरुषों का दमन करने के लिये, उसी तरह से अर्जुन की रक्षा के लिये भगवान् शिव किरात का रूप धारण कर पृथ्वी पर विचरण करते रहे। इसलिये रुद्र को किरात कहा गया है॥४१॥

१६. कंकालधारणलीला

पुरा त्रैविक्रमं रूपं स्वीकृत्य परमाद्भुतम्।
जित्वा बलिं महादैत्यमतिदृप्तोऽभवद्धरिः ॥४२॥
निरुन्धन् ववृधे सोऽयं सूर्यचन्द्रगतिं तथा।
विजित्य तं महादेवः कङ्कालं तस्य सन्दधे।
तस्मात् कङ्कालधारीति विश्रुतः परमेश्वरः ॥४३॥

१७. चण्डेशानुग्रहलीला

पूर्वं चण्डाभिधं विप्रं पापिष्ठं पितृघातिनम्।
तमनन्यगतिं देवि रक्षयित्वा सदाशिवः ॥४४॥
ददावस्य गणेशत्वं सारूप्यं च ततः प्रिये।
चण्डेशानुग्राहकं च प्रवदन्ति शिवं बुधाः ॥४५॥

१८. विषपानलीला

समुद्रमथनोद्भूतं गरलं चातिभीषणम्।
कृत्स्नं जगत्त्रयं दग्धुं ववृधे प्रलयाग्निवत् ॥४६॥

पुराने समय की बात है कि अत्यन्त अद्भुत त्रिविक्रम (वामन) का रूप धारण कर महान् दैत्य बलि को जीत कर विष्णु बहुत अहंकारी हो गये॥४२॥ उस समय ये सूर्य और चन्द्र की गति को भी रोक कर बढते चले गये। तब उनको जीत कर, अर्थात् उनका वध कर महादेव ने उनके कंकाल को धारण कर लिया। तभी से परमेश्वर शिव कंकालधारी के नाम से प्रसिद्ध हो गये॥४३॥

हे देवि! पुराने समय की बात है कि पिता का भी वध कर डालने वाला अतीव पापी चण्ड नाम का ब्राह्मण कहीं शरण न पा सका। उसकी कहीं गति न देख कर सदाशिव ने उसकी भी रक्षा की॥४४॥ हे प्रिये! इस पापी को भी अपनी शरण में आने पर भगवान् शिव ने पहले उसको अपने गणों का पति बना दिया और उसे अपनी सारूप्य पदवी प्रदान की। तभी से विद्वान् मनुष्य शिव को चण्डेश के रक्षक के रूप में स्मरण करते हैं॥४५॥

देवताओं के समुद्र के मथने पर उससे अत्यन्त भयानक गरल (हलाहल विष) उत्पन्न हुआ और यह प्रलय काल की अग्नि के समान तीनों लोकों को भस्म कर डालने के लिये बढने लगा॥४६॥ उस विष को देवताओं के भी स्वामी (रक्षक)

तद्विषं चापि देवेशः कण्ठे धृत्वाऽखिलान् सुरान्।
ररक्ष च जगत्कृस्नं सदेवासुरमानुषम्।
कृपया शङ्करस्तेन विषसंहारकोऽभवत्॥४७॥

१९. चक्रदानलीला

जलन्धरवधार्थाय सृष्टं चक्रं सदाशिवः।
स्वपूजां कुर्वते नित्यं सहस्रकमलैः शुभैः॥४८॥
तथैकपुष्पलोपेन नेत्रार्पणविधायिने।
विष्णवे तद्ददौ चक्रं तस्माच्चक्रप्रदो हरः॥४९॥

२०. विघ्नेशवरदानलीला

विघ्नेशाय वरं दातुं प्रसादाभिमुखः शिवः।
आविर्भूतस्ततो देवो विघ्नेश्वरवरप्रदः॥५०॥

२१. सोमास्कन्दलीला

हिरण्याक्षसुतः पूर्वं बलवानन्धकासुरः।
दर्पितो वरदानेन बाधते स्म जगत्त्रयम्॥५१॥

भगवान् शिव ने अपने कण्ठ में धारण कर लिया और उस प्रकार समस्त देवताओं की ही नहीं, देव, असुर, मनुष्य सहित सारे जगत् की रक्षा की। उस कृपादृष्टि के कारण, अर्थात् उस हलाहल विष का स्वयं पान कर सारे उपद्रव को शान्त कर देने के कारण ही शिव को विषसंहारक कहा जाता है॥४७॥

जलन्धर राक्षस के वध के लिये बनाये गये चक्र की प्राप्ति के लिये विष्णु एक हजार सुन्दर कमलों से प्रतिदिन शिव की पूजा करते थे। ऐसे ही पूजा करते समय एक दिन एक पुष्प की कमी पड़ जाने पर विष्णु ने अपने नेत्र को ही कमल के रूप में अर्पित कर दिया। इससे सन्तुष्ट होकर सदाशिव ने विष्णु को वह चक्र प्रदान कर दिया। तभी से सभी प्रकार के दुःखों का हरण करने वाले भगवान् शिव चक्रप्रद कहलाये॥४८-४९॥

विघ्नों के ईश्वर भगवान् गणेश को वर देने के लिये जब भगवान् शिव प्रसन्नता पूर्वक उनके सामने प्रकट हुए, तभी से भगवान् शिव विघ्नेश्वर के वरदाता के रूप से प्रसिद्ध हुए॥५०॥

हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धकासुर बड़ा बलशाली था। वरदान से अहंकार में भर कर यह तीनों लोकों को कष्ट पहुँचाया करता था॥५१॥ ब्रह्मा आदि देवगण हिरण्याक्ष के भय से त्रस्त होकर परमेश्वर भगवान् शिव की स्तुति करने लगे।

भीता ब्रह्मादयो देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम्।
तदा प्रसन्नो देवेशः पार्वतीस्कन्दसंयुतः ॥५२॥
अन्धकं तु विनिर्जित्य ररक्ष भुवनत्रयम्।
सोमास्कन्दस्ततः प्रोक्तः परमात्मा सदाशिवः ॥५३॥

२२. एकपादलीला

पुरा कल्पान्तरे रुद्रो जगत् स्थावरजङ्गमम्।
संहृत्य लीलया देवश्चचारैकपदा प्रिये।
तेनैकपादरुद्रोऽभूत् सर्वात्मा परमेश्वरः ॥५४॥

२३. सुखावहलीला

अथ सर्वगतः शम्भुर्दयालुर्भक्तवत्सलः।
जगदाह्लादजनकं सर्वावयवसुन्दरम् ॥५५॥
रत्नकङ्कणकेयूरमकुटाद्यैरलङ्कृतम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं दिव्यमङ्गलविग्रहम् ॥५६॥
दधार परमं रूपं सुखैकनिलयं शिवः।
सुखावहस्ततः प्रोक्तः शङ्करो लोकशङ्करः ॥५७॥

तब देवताओं के स्वामी शिव पार्वती और स्कन्द के साथ प्रकट हुए ॥५२॥ अन्धकासुर को जीत कर उन्होंने तीनों भुवनों की रक्षा की। तभी से परमात्मा सदाशिव सोमास्कन्द के नाम से प्रख्यात हुए ॥५३॥

हे प्रिये! पुराने समय की बात है कि दूसरे किसी कल्प में भगवान् रुद्र ने सारे स्थावरजंगमात्मक जगत् का संहार कर दिया और तब लीला करते हुए एक पैर से सर्वत्र विचरण करते रहे। इस लीला के करने से सर्वात्मा परमेश्वर शिव एकपाद रुद्र कहलाए ॥५४॥

अब एक समय की बात है कि सर्वत्र विद्यमान दयालु भक्तवत्सल भगवान् शिव ने सारे जगत् को आह्लादित कर देने वाले सभी सुन्दर अवयवों से परिपूर्ण ॥५५॥ रत्नजटित कंकण, केयूर, मुकुट आदि से अलंकृत, सभी प्रकार के आभूषणों से भूषित दिव्य मंगलमय शरीर से सम्पन्न ॥५६॥ केवल सुख के एक मात्र आश्रय परम सुन्दर स्वरूप को धारण कर लिया। उस शरीर को धारण करने से ही सर्वत्र सुख का संचार करने वाले, लोक का कल्याण करने वाले शिव सुखावह के नाम से प्रख्यात हुए ॥५७॥

२४. दक्षिणामूर्तिलीला

योगिनामुपकाराय वीतरागः पुनः शिवः।
दक्षिणामूर्तिरूपेण वटमूलं समाश्रितः॥५८॥
करस्फुरत्पुस्तकाक्षमालान्यस्तनिजेक्षणः ।
ज्ञानोपदेष्टा सर्वेषां मुनीनामभवद् गुरुः॥५९॥

२५. लिङ्गोद्भवलीला

पुरा दिव्यं महालिङ्गं कारणत्रयकारणम्।
शक्तिपीठसमायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम्॥६०॥
ध्यानपूजास्पदं चैवमुद्भूतं ज्योतिरात्मकम्।
तस्माल्लिङ्गोद्भवः प्रोक्तः शिवस्तु कमलानने।
एवमादिप्रभेदैश्च लीला बहुविधाः श्रुताः॥६१॥

ब्रह्माद्याः शिवस्यैव शक्तयः

स्वतन्त्रशक्तियुक्तस्य तस्य संकल्पमात्रतः।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे तदीयाश्चैव शक्तयः।
सम्भूताः कोटिसंख्याकास्तदाज्ञापरिपालकाः॥६२॥

पुनः वीतराग भगवान् शिव ने योगियों का उपकार करने के लिये दक्षिणामूर्ति का स्वरूप धारण कर वट वृक्ष के नीचे अपना स्थान बना लिया॥५८॥ उनके हाथ में पुस्तक और जपमाला शोभायमान थी और उनकी दृष्टि केवल पुस्तक और अक्षमाला पर ही टिकी हुई थी। शिव का यह दक्षिणामूर्ति स्वरूप सबको ज्ञान का उपदेश करने के कारण सभी मुनियों के भी गुरु के रूप में मान्य हो गया है॥५९॥

समवायी, असमवायी और निमित्त नामक तीन कारणों के भी कारणस्वरूप दिव्य महालिंग का पहले शक्तिपीठ और नाद, बिन्दु और कला से संयुक्त स्वरूप प्रकट हुआ था॥६०॥ हे कमलानने! शिव का यह ज्योतिर्मय स्वरूप ध्यान और पूजा के आश्रय के रूप में प्रकट हुआ था। अतः शिव का यह स्वरूप लिंगोद्भव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह से भगवान् शिव की अन्य भी अनेक प्रकार की लीलाएँ सुनाई पड़ती हैं॥६१॥

स्वतन्त्र शक्ति से सम्पन्न उस भगवान् शिव के संकल्प मात्र से ब्रह्मा इत्यादि सब देवता और उनकी करोड़ों शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। वे सब उस भगवान् शिव की आज्ञा का ही पालन करते हैं॥६२॥ इसीलिये विद्वद्गण मुझे ही सर्वदेवात्मक

तस्मात् सर्वात्मकं देवं महेशं मां विदुर्बुधाः।
अहमेव हि मन्तव्यो मन्त्रैः सर्वार्थसाधकैः॥६३॥
एतस्मादधिको देवि समो वा नहि विद्यते।
एवं शिवस्वरूपं ते कथितं मुक्तिदं मया।
जगदुद्धारनिरते किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥६४॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे शिवलीलास्वरूपनिरूपणं नाम द्वितीयः पटलः॥२॥

महेश्वर मानते हैं। सभी प्रयोजनों के साधक मन्त्रों से एक मात्र मेरा ही मनन करना चाहिये॥६३॥ भगवान् महेश्वर से अधिक तो क्या उसके बराबर भी कोई देवता नहीं है। इस तरह से मैंने तुम्हें मुक्तिदाता शिव के स्वरूपों का वर्णन किया है। जगत् के उद्धार में लगी हुई हे देवि! अब तुम पुनः क्या सुनना चाहती हो॥६४॥

इस प्रकार श्री सूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह शिव की लीलाओं के स्वरूप का निरूपण करने वाला दूसरा पटल समाप्त हुआ॥२॥



तृतीयः पटलः

देव्युवाच

मन्त्राः कतिविधा लोके साधकानां फलप्रदाः।
तेषु प्रशस्ता देवेश यावन्तः प्रचरन्ति वै।
एतत्सर्वं समासेन कृपया कथयस्व मे॥१॥

महेश्वर उवाच

सप्तकोटिमहामन्त्रा विद्यन्ते लोकपावनाः।
केचिन्मन्त्रा वैष्णवाश्च केचिच्छक्त्यधिदेवताः।
केचिद् वै क्षुद्रदैवत्याः केचिन्मत्प्रतिपादकाः॥२॥
तत्तन्मन्त्राभिमानिन्यः साधकानां हि देवताः।
फलं प्रददते देवि तद्भुक्त्वाऽऽयान्ति ते पुनः॥३॥

मन्त्रेषु शिवमन्त्राणां श्रेष्ठत्वम्

मदीयानां हि मन्त्राणां ये वै जापकसत्तमाः।
तेषामहं समुद्धर्ता जन्ममृत्युमहाभयात्।
मदीयानेव मन्त्रांश्च जपेत् तस्माद्विचक्षणः॥४॥

देवी का प्रश्न—

हे देवेश! कितने प्रकार के मन्त्र इस लोक में साधकों के लिये फलप्रद हैं। उनमें जितने अत्यन्त प्रशस्त मन्त्रों के रूप में प्रसिद्ध हैं, उनके विषय में आप सब बातें कृपा कर मुझे कहिये॥१॥

महेश्वर का उत्तर—

यहाँ सात करोड़ मन्त्र सभी लोकों को पवित्र करने वाले हैं। उनमें से कुछ मन्त्र विष्णु से संबद्ध हैं और कुछ शक्ति से। कुछ मन्त्र क्षुद्र देवताओं से संबद्ध हैं और उसी तरह से कुछ मन्त्र शिव से संबद्ध हैं॥२॥ उन उन मन्त्रों के अभिमानी देवता साधकों को फल प्रदान करते हैं। उन फलों का उपयोग कर वे पुनः इस संसारचक्र में आ गिरते हैं॥३॥

किन्तु जो साधक श्रेष्ठ शिवसम्बन्धी मन्त्रों का जप करते हैं, उनका मैं जन्म और मृत्यु रूपी महाभय से उद्धार कर देता हूँ। इसलिये विद्वान् व्यक्ति को चाहिये कि वह शिवसंबन्धी मन्त्रों का ही जप करे॥४॥ शैव मन्त्रों में

मन्त्राणामपि शैवानां मुख्या एकादश स्मृताः।
तत्राघोरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टप्रदो नृणाम्॥५॥
तस्मादपि श्रेष्ठतरा मम पञ्चाक्षरी शिवे।
अस्य मन्त्रस्य चैवान्ये उपमन्त्राः प्रकीर्तिताः॥६॥
अस्यैव हि प्रभावेण वेदधर्माश्च शाश्वताः।
इतिहासपुराणानि समस्ता आगमा अपि।
प्रवर्तन्ते हि देवेशि सर्वलोकोपकारकाः॥७॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा।
आदित्यादिग्रहाश्चैव लोका वै भूर्भुवादयः॥८॥
गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धा ये चान्ये देवयोनयः।
पञ्चाक्षरप्रभावेण तिष्ठन्ति हि सनातनाः॥९॥
अल्पवर्णसमायुक्तमधिकार्थमसंशयम्।
सारात्सारतरं शैवं मन्त्रं मोक्षैककारणम्।
सर्वसिद्धिप्रदं दिव्यं सर्वतत्त्वप्रकाशकम्॥१०॥

भी [१]ग्यारह मन्त्र मुख्य माने गये हैं। इन ग्यारह मन्त्रों में भी अघोर महामन्त्र मनुष्यों की सभी कामनाओं को पूरा करता है॥५॥ हे पार्वति! उस [२]अघोर मन्त्र से भी श्रेष्ठ मेरा पंचाक्षरी मन्त्र है। अन्य सभी मन्त्र इस मुख्य पंचाक्षरी मन्त्र के उपमन्त्र, अर्थात् सहायक मन्त्र हैं॥६॥ हे देवेशि! इस पंचाक्षरी मन्त्र के प्रभाव से सभी लोकों के उपकारक शाश्वत वैदिक धर्म, इतिहास, पुराण और समस्त आगम भी प्रवृत्त होते हैं॥७॥ इसी पंचाक्षरी मन्त्र के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेन्द्र, देवता, आदित्य आदि नवग्रह, भूः, भुवः आदि समस्त लोक, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और अन्य भी समस्त देवयोनियाँ सनातन रूप में, अर्थात् समस्त कालों में विद्यमान रहती हैं॥८-९॥ इस पंचाक्षरी मन्त्र में वर्ण तो थोड़े से ही है, किन्तु इनका अर्थ अत्यन्त गंभीर है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह शिव का पंचाक्षरी मन्त्र समस्त मन्त्रों के सार का भी सार है, मोक्ष का एकमात्र कारण है। यह दिव्य मन्त्र सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है, सभी तत्त्वों का प्रकाशक है॥१०॥ हे देवि! समस्त विद्याओं

---

१. छः षडंग मन्त्र और पाँच ब्रह्म मन्त्रों को मिला कर मन्त्रों की संख्या ११ होती है। ऊपर प्रथम पटल की पाँचवीं टिप्पणी में उद्धृत ग्रन्थ (पृ० ८३) देखिये।

२. महिम्नस्तोत्र में कहा गया है—"अघोरान्नापरो मन्त्रः" (श्लो० ३५)। यहाँ पक्षाक्षरी मन्त्र को अघोर मन्त्र से भी श्रेष्ठ माना गया है।

आद्यबीजमिदं देवि विद्यानामप्यशेषत:।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं सारं वटबीजं यथा भुवि ॥११॥
मन्त्रोऽयं वाचि यस्यास्ति स एवाहं न संशय:।

पञ्चाक्षरषडक्षरमन्त्रोद्धारविधि:

अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि विधिमुद्धारपूर्वकम् ॥१२॥
नम:पदं वदेत् पूर्वं यान्तं शिवपदं तत:।
प्रणवेन समायुक्तं षडक्षरमिति स्मृतम् ॥१३॥
वेदागमेषु सर्वेषु संस्थितोऽयं महामनु:।
समस्तफलदस्तस्माज्ज्ञेयो वैदिकतान्त्रिकै: ॥१४॥

षडक्षरमन्त्रमहिमा

यावन्त: शिवमन्त्रा: स्यु: परार्थैकपरा: प्रिये।
षडक्षरस्य ते सर्वेऽप्यर्थस्यैव प्रकाशका: ॥१५॥

का यह मूल कारण है। पृथ्वी पर जैसे वट वृक्ष का बीज बहुत सूक्ष्म होने पर भी महान् वट वृक्ष का उद्भावक है, उसी तरह से अत्यन्त सूक्ष्म से भी सूक्ष्म यह मन्त्र महान् फल को देने वाला है॥११॥ जिसकी वाणी में यह पंचाक्षर मन्त्र विद्यमान है, वह साक्षात् शिव ही है, इसमें कोई संदेह नहीं रखना चाहिये।

इस मन्त्र की [३]उद्धार की पद्धति के साथ मैं तुम्हें इसके जप की विधि भी बताऊँगा॥१२॥ पहले [४]नम: पद का उच्चारण करना चाहिये। इसके बाद 'आय' पद को अन्त में जोड़कर शिव पद का उच्चारण करना चाहिये। इस पंचाक्षरी मन्त्र को यदि प्रणव से संयुक्त कर दिया जाता है, तो वह षडक्षरी मन्त्र हो जाता है॥१३॥ यह महामन्त्र सभी वेदों और आगमों में विद्यमान है। इसीलिये वैदिक और तान्त्रिक सभी उपासकों के लिये यह समान रूप से फल प्रदान करता है॥१४॥

हे प्रिये! जितने भी शिवमन्त्र हैं, वे भले ही अन्य अनेक अर्थों के प्रतिपादक हों, किन्तु वास्तव में देखा जाय तो वे सब एकमात्र षडक्षर मन्त्र के अर्थ को ही प्रकाशित करते हैं॥१५॥ वेदों में भी इस षडक्षरी मन्त्र का वर्णन होने से यह सभी

---

३. मन्त्र के स्वरूप को गुप्त रखने के लिये आगमों में उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया जाता। वहाँ पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से या कहीं पूरे मन्त्र को टुकड़ों में विभक्त कर उनका स्वरूप बताया जाता है। इस प्रकार से उपदिष्ट मन्त्र के स्वरूप को जानने के लिये उसकी पद्धति से परिचित होना आवश्यक है। इसी विधि को शास्त्रों में मन्त्रोद्धार पद्धति कहा जाता है।

४. सिद्धान्तशिखामणि (८।७) तथा अनुभवसूत्र (६।४६) से तुलना कीजिये।

प्रमाणभूत: सर्वेषां वेदोक्तत्वाद् विशेषत:।
प्रणवेन युतो देवि मन्त्रराज: प्रकीर्तित:॥१६॥
शान्ता: सुशीला धर्मिष्ठा: सत्यव्रतपरायणा:।
वेदमन्त्रैकनिरतास्तेषां ध्येय: षडक्षर:॥१७॥
कृतघ्ना: पापिनो ये च वेदमन्त्रबहिष्कृता:।
श्रद्धामतिविहीनाश्च देयस्तेषां न जातुचित्॥१८॥
मदेकशरणा ये च मदाराधनतत्परा:।
अपि वेदविरुद्धाश्च त एवात्राधिकारिण:॥१९॥
वैदिका अप्यभक्ताश्चेदन्यदेवार्चनापरा:।
अन्यलाञ्छनयुक्ताश्च ते तु नात्राधिकारिण:॥२०॥
येषु येषु महादेवि भक्तिरव्यभिचारिणी।
योग्यास्त एव मन्त्रस्य भक्तिरेवात्र कारणम्॥२१॥
प्रणवेन विना दद्यात् स्त्रीशूद्राणामिमं मनुम्।
यदि दद्यात् सप्रणवमुभयो: पतनं भवेत्॥२२॥

के लिये प्रमाण रूप में मान्य है। प्रणव (ॐकार) से संयुक्त यह मन्त्र मन्त्रराज के नाम से प्रसिद्ध है॥१६॥ जो व्यक्ति शान्त स्वभाव के हैं, शील सम्पन्न, धर्म-परायण और सत्य व्रत का आचरण करते हैं, एकमात्र वेदमन्त्रों में जिनका विश्वास है, उनके लिये यह षडक्षरी मन्त्र सर्वदा ध्येय है, अर्थात् वे इस षडक्षरी मन्त्र के द्वारा ही भगवान् शिव का ध्यान करते हैं॥१७॥ जो कृतघ्न हैं, किये गये उपकार को भूल जाते हैं, पापी हैं और जो वेद मन्त्रों से बहिष्कृत हैं, जो श्रद्धा रहित हैं, ऐसे मनुष्यों को यह मन्त्र कभी नहीं देना चाहिये॥१८॥ जो एकमात्र मेरी शरण में आगये हैं और जो सदा मेरी आराधना में लगे रहते हैं, वे भले ही वेदों के विरोधी हो, अर्थात् आगमों की अपेक्षा वेदों को कम महत्त्व देते हों, इस षडक्षरी मन्त्र के वे ही अधिकारी माने जाते हैं॥१९॥ वैदिक धर्म का पालन करने वाले भी यदि शिवभक्त नहीं है, दूसरे देवों की उपासना में लगे हैं और शिवधर्म में बहिष्कृत चिह्नों को धारण करते हैं, तो वे भी इस मन्त्र की दीक्षा के अधिकारी नहीं है॥२०॥ हे महादेवि! जिन जिन मन्त्रों में जिस व्यक्ति की अन्यनिरपेक्ष भक्ति है, वे ही उस मन्त्र के अधिकारी होते हैं, क्योंकि किसी भी मन्त्र की दीक्षा में भक्ति ही प्रधान कारण मानी जाती है॥२१॥ स्त्री और शूद्र को यह मन्त्र बिना प्रणव (ॐकार) का दिया जाता है। जो व्यक्ति इनको प्रणव के साथ इस मन्त्र की दीक्षा देता है, तो दीक्षा देने वाले और लेने वाले दोनों का पतन निश्चित है॥२२॥

मन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देश:

अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि शृणु ऋष्यादिकं प्रिये।
वामदेव ऋषि: पङ्क्तिश्छन्दो देव: शिव: प्रभु: ॥२३॥
बीजं प्रणव एव स्यान्नम: शक्तिरुदाहृता।
शिवाय कीलकं मोक्षे विनियोग: प्रकीर्तित: ॥२४॥
प्रत्यक्षरमिदं गोप्यं शृणुष्वावहिताऽखिलम्।
ऋषिश्छन्दो देवताश्च वर्णस्वरमुखानि च ॥२५॥
गौतमोऽथ ऋषिश्छन्द गायत्री नन्दिदेवता।
आद्यस्वर: पीतवर्ण: पूर्वस्थं प्रथमाक्षरे ॥२६॥
अत्रिर्नाम ऋषिश्छन्द उष्णिग् रुद्राधिदैवतम्।
कृष्णवर्णोऽनुदात्तश्च द्वितीये दक्षिणाननम् ॥२७॥
विश्वामित्र ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुब् देवो हरि: प्रिये।
धूम्रवर्ण उदात्तश्च पश्चिमास्यं तृतीयके ॥२८॥
अथाङ्गिरा ऋषिश्छन्दो बृहती देवतात्मभू:।
प्रचय: स्वर्णवर्णश्च चतुर्थे मुखमुत्तरम् ॥२९॥
भारद्वाज ऋषिश्छन्दो विराट् स्कन्दोऽधिदेवता।
स्वरितो रक्तवर्णश्च मुखमूर्ध्वं च पञ्चमे ॥३०॥

हे प्रिये! अब मैं इस मन्त्र के ऋषि आदि का वर्णन करूँगा, तुम उसे सावधानी से सुनो। इसका ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति और देवता भगवान् शिव हैं॥२३॥ इसका बीज प्रणव है और नम: इसकी शक्ति है। इसका कीलक शिवाय है और मोक्ष की प्राप्ति के लिये इस षडक्षर मन्त्र का विनियोग किया जाता है॥२४॥ अब मैं पंचाक्षरी मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के ऋषि, छन्द, देवता, वर्ण, स्वर और मुख का वर्णन कर रहा हूँ। यह अत्यन्त गोपनीय विषय है। इसे तुम सावधानी से सुनो॥२५॥ प्रथम अक्षर का ऋषि गौतम, छन्द गायत्री, देवता नन्दी, स्वर स्वरित, वर्ण पीत और पूर्व मुख है॥२६॥ द्वितीय अक्षर का ऋषि अत्रि, छन्द उष्णिक्, देवता रुद्र, वर्ण कृष्ण, स्वर अनुदात्त और मुख दक्षिण है॥२७॥ हे प्रिये! तृतीय अक्षर का ऋषि विश्वामित्र, छन्द अनुष्टुप्, देवता विष्णु, वर्ण धूम, स्वर उदात्त और मुख पश्चिम है॥२८॥ अब चतुर्थ अक्षर का ऋषि अंगिरा, छन्द बृहती, देवता ब्रह्मा, स्वर प्रचय, वर्ण सुवर्णसदृश और मुख उत्तर है॥२९॥ पंचम वर्ण का ऋषि भरद्वाज, छन्द विराट्, देवता स्कन्द, स्वरित स्वर, वर्ण रक्त और मुख ऊर्ध्व है॥३०॥

न्यासविधि:

ततो न्यासविधिं वक्ष्ये समासाच्छृणु पार्वति।
नकाराद्यैर्बिन्दुयुतैः पञ्चभिर्ब्रह्मभिः सह।
चतुर्थ्यन्तैः कनिष्ठादिष्वङ्गुलीषु क्रमान्न्यसेत्॥३१॥
एवं कृत्वा करन्यासमङ्गन्यासमथाचरेत्।
मुखहृत्पादयुगलगुह्यशीर्षेषु च क्रमात्॥३२॥
चतुर्थ्यन्तैरनन्तादिशक्तिधामादिभिः सह।
षड्वर्णपूर्वकैर्न्यस्येत् षडङ्गानि यथाक्रमम्।
न्यासमेवं क्रमात् कृत्वा ततो ध्यायेत मां शिवम्॥३३॥

शिवध्यानम्

शुद्धस्फटिकसंकाशं चारुचन्द्रार्धधारिणम्।
रत्नाकल्पोज्ज्वलं दिव्यं महेशं पार्वतीपतिम्॥३४॥

हे पार्वति! अब मैं संक्षेप में न्यास की विधि को बताऊँगा, उसे तुम सुनो। [५]नकार आदि पाँच अक्षरों के साथ बिन्दु को जोड़कर क्रमशः इनमें से एक एक के साथ चतुर्थ्यन्त सद्योजात आदि पंचब्रह्म वाचक पदों को जोड़ना चाहिये। तब क्रमशः इनका कनिष्ठा आदि अंगुलियों में न्यास करे॥३१॥ इस प्रकार करन्यास की विधि को पूरा कर तब [६]अंगन्यास का क्रमशः मुख, हृदय, पादयुगल, गुह्य और शीर्ष नामक पाँच अंगों में विन्यास करे॥३२॥ अनन्त शक्तिधाम आदि पदों के साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़कर इनके पहले षडक्षरी मन्त्र के छः अक्षरों को क्रमशः जोड़कर क्रमशः [७]षडंग न्यास करे। इस तरह से न्यासों को कर लेने के उपरान्त भगवान् शिव का ध्यान करे॥३३॥

भगवान् शिव शुद्ध स्फटिक के समान हैं, मनोरम चन्द्रार्ध को अपने ललाट पर धारण किये हुए हैं। रत्न के आभूषणों को धारण किये हुए हैं। दिव्य स्वरूप धारी ये महेश्वर पार्वती के पति हैं॥३४॥ परशु, मृग, वर और अभय मुद्रा से इनके चारों

---

५. नं सद्योजाताय कनिष्ठिकाभ्यां नमः, मं वामदेवाय अनामिकाभ्यां नमः, शिं अघोराय मध्यमाभ्यां नमः, वां तत्पुरुषाय तर्जनीभ्यां नमः, यं ईशानाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। अगले श्लोक में इसी को करन्यास कहा गया है।

६. नं. सद्योजाताय नमो मुखे, मं वामदेवाय नमो हृदये, शिं अघोराय नमः पादद्वये, वां तत्पुरुषाय नमो गुह्ये, यं ईशानाय नमः शिरसि। यह अंगन्यास का क्रम है।

७. ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः, नं सर्वज्ञशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा, मं नित्यतृप्तिधाम्ने शिखायै वषट्, शिं अनादिबोधशक्तिधाम्ने कवचाय हुं, वां स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अलुप्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट्। यह षडंगन्यास का क्रम है।

परश्वेणवराभीतिहस्ताम्बुजमनोहरम् ।
पद्मासनसमासीनं रुद्रं देवगणैर्वृतम् ॥३५॥
व्याघ्रचर्मपरीधानं जटामण्डलमण्डितम् ।
गङ्गाधरं विरूपाक्षं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम् ॥३६॥
वृषध्वजं विश्वनाथं सुप्रसन्नमुखाम्बुजम् ।
एवं ध्यात्वा हृदम्भोजे चिदातपविकासिते ॥३७॥

पूजनविधिः

आवाहनादिषण्मुद्रा दर्शयित्वाऽथ साधकः ।
गन्धादिपञ्चमुद्राभिर्मानसैरुपचारकैः ।
पञ्चभिः पूजयित्वा तु जपेन्मन्त्रं निराकुलम् ॥३८॥
नदीतीरे पर्वताग्रे देवागारे विशेषतः ।
विविक्तदेशे निर्दोषे निर्भये निरुपद्रवे ॥३९॥

करकमल सुशोभित हैं। पद्मासन पर समासीन हैं और ये भगवान् रुद्र देवगणों से घिरे हुए हैं॥३५॥ व्याघ्र के चर्म को ये ओढे हुए हैं, जटामण्डल से सुशोभित हैं, जटाजूट में गंगा को धारण किये हुए हैं। तीन आखों के कारण ये विरूपाक्ष हैं और सदाशिव रूपधारी ये शिव पाँच मुखों से सुशोभित हैं॥३६॥ ये भगवान् शिव वृषध्वज हैं, सारे विश्व के स्वामी हैं और इनका मुखकमल सदा प्रसन्नता से भरा रहता है। चित्, अर्थात् ज्ञान के प्रकाश से विकसित अपने हृदय कमल में इस तरह से शिव का ध्यान करना चाहिये॥३७॥

इसके बाद आवाहन[८] आदि छः प्रकार की मुद्राओं को दिखा कर साधक गन्ध आदि पाँच मुद्राओं से मानसिक पंचोपचार पूजा सम्पन्न कर शान्त भाव से मन्त्र का जप करे॥३८॥ नदी के तट पर, पर्वत के शिखर पर, देवालय में, एकान्त स्थान में दोषरहित, भयरहित और उपद्रवरहित स्थान में विशेष रूप में शिव की आराधना की जाती है॥३९॥ हे देवि! पद्मासन बाँधकर, पूर्वमुख या उत्तराभिमुख

---

८. आवाहनी, स्थापनी, संनिधापनी, संरोधनी, सन्मुखीकरणी, सकलीकृति नामक छः मुद्राओं के लक्षण शारदातिलक (२३।१०७-११०) में दिये गये हैं। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य नामक पाँच मुद्राओं का स्वरूप परशुरामकल्पसूत्र के परिशिष्ट (पृ० ६१५) में देखिये।

पद्मासने समासीन: प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
समकायशिरोग्रीवस्त्रपालस्यादिवर्जित:　　।
शिवं ध्यायन् जपेद्देवि जीवन्मुक्तो न संशय: ।।४०।।

त्रिविधो जप:

स जपस्त्रिविध: प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसै:।
उच्चैस्ताल्वादिकस्पर्शाज्जपेत् स्पष्टपदाक्षरम्।
सम्यक् श्रोत्रगतश्चैव स जपो वाचिक: स्मृत: ।।४१।।
शनैस्ताल्वादिकस्पर्शात्किञ्चित् स्पष्टपदाक्षरम्।
जपेदीषत्कर्णगतमुपांशु: स जपो भवेत् ।।४२।।
मन्त्रार्थं मनसा ध्यायन् वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्।
आवृत्य गणनात् पूर्वं जपेन्मानस उच्यते।
त्रयाणामपि चैतेषां वरं स्यादुत्तरोत्तरम् ।।४३।।
एवं जप्त्वा जपान्ते च षडङ्गन्यासमाचरेत्।
ततो निर्याणमुद्रां वै प्रदर्श्य च समापयेत् ।।४४।।

होकर, शरीर, शिर और ग्रीवा को एक सीध में रख कर लज्जा, आलस्य आदि से मुक्त होकर पुरुष यदि शिव का ध्यान करते हुए जप करता है, तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।४०।।

वाचिक, उपांशु और [१]मानस के भेद से यह जप तीन प्रकार का है। तालु आदि स्थानों से स्पर्शपूर्वक ऊँचे स्वर में जपा गया, स्पष्ट पद और अक्षर वाला, दूसरों के कानों तक पहुँचा हुआ जप वाचिक कहलाता है।।४१।। तालु आदि स्थानों से अल्प स्पर्श होते हुए भी जहाँ पद और अक्षर का उच्चारण स्पष्ट हो, किन्तु दूसरे के कानों तक थोड़ा ही पहुँचता हो, तो वह जप उपांशु कहलाता है।।४२।। मन्त्र के अर्थ का मन से ध्यान करते हुए, एक वर्ण से दूसरे वर्ण को और एक पद से दूसरे पद को पकड़ कर जो मन्त्र की आवृत्ति की जाती है, उसे मानस जप कहते हैं। इन तीनों प्रकार के जपों में उत्तरोत्तर जप श्रेष्ठ माने गये हैं, अर्थात् वाचिक से उपांशु और उपांशु से मानस जप श्रेष्ठ है।।४३।। इस प्रकार मन्त्रजप कर लेने के उपरान्त पुन: षडंग न्यास करे। तब निर्याण मुद्रा प्रदर्शित कर जप समाप्त करे।।४४।।

---

१. जप के ये त्रिविध भेद मनुस्मृति (२।८५) के साथ सिद्धान्तशिखामणि (८।२७-२९) तथा अन्य शास्त्रों और आगमों में भी वर्णित हैं। यहाँ उनका अपना लक्षण भी दिया गया है।

पुरश्चरणविधिः

अथैतस्य प्रवक्ष्यामि पुरश्चरणमुत्तमम्।
पञ्चलक्षं जपेद् देवि दीक्षितश्च विशेषतः॥४५॥
अनन्यतत्परो भूत्वा तावत्संख्यादशांशकैः।
क्षीराज्यैस्तर्पयित्वाऽथ जुहुयात् तद्दशांशकम्॥४६॥
पायसैः शर्कराभिश्च माहेशांस्तु शिवव्रतान्।
वेदमार्गैकनिरतान् सदाचारपरायणान्॥४७॥
स्वधर्मनिरतान् शान्तान् भोजयेत् तद्दशांशतः।
एवंकृतो महादेवि पौरश्चरणिको भवेत्॥४८॥
ततः सिद्धमिमं मन्त्रं जपेन्नित्यमतन्द्रितः।
अष्टोत्तरसहस्रं वाऽप्यष्टोत्तरशतं च वा।
निर्धूय सर्वपापानि मम लोके महीयते॥४९॥

हे देवि! अब मैं उस मन्त्र की उत्तम [१०]पुरश्चरण विधि को बताऊँगा। दीक्षित व्यक्ति को विशेष रूप से इसका पाँच लाख बार जप करना चाहिये॥४५॥ अनन्यभाव से उस मन्त्र के देवता का ध्यान करते हुए पाँच लाख के दसवें भाग से दूध मिश्रित जल से तर्पण और उसके भी दसवें भाग से घृत की आहुति देनी चाहिये॥४६॥ इसके भी दसवें भाग की संख्या के शिवव्रत का पालन करने वाले माहेश्वरों (जंगमों) को, जो कि वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले हैं, सदाचार सम्पन्न हैं, अपने धर्म के पालन में लगे हुए हैं और शान्त स्वभाव के हैं, पायस और शर्करा का भोजन कराना चाहिये। हे महादेवि! ऐसा करने से यह मन्त्र की पुरश्चरण विधि पूरी होती है॥४७-४८॥ इसके बाद पुरश्चरण विधि के अनुष्ठान से सिद्ध हुए इस मन्त्र का नित्य बिना आलस्य के जप करना चाहिये। यह १००८ बार या १०८ बार किया जा सकता है। ऐसा करने से जपकर्ता के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और वह शिवलोक में आदरपूर्वक स्थान पाता है॥४९॥

---

१०. यहाँ पुरश्चरण की संक्षिप्त विधि बताई गई है। विशेष जिज्ञासुओं को चन्द्रज्ञानागम का उपोद्घात देखना चाहिये।

काम्यजपः

साधको यदि कामी स्यादिष्टान् कामान् प्रसाधयेत्।
द्विसहस्रं जपं कुर्याद् रोगाणामपनुत्तये।
आयुष्कामो जपेद् देवि त्रिसहस्रमिमं मनुम्॥५०॥
उत्तरोत्तरवृद्ध्यर्थं जपेन्नित्यं सहस्रशः।
मासत्रयं महादेवि सर्वकामानवाप्नुयात्॥५१॥
शतलक्षजपाद् देवि साक्षाच्छम्भुः स्वयं भवेत्।
तस्मादयं सदा जप्यो भुक्तिमुक्तिफलेच्छुना॥५२॥

षडक्षरमन्त्रमहिमा

मुमुक्षुश्चेच्छिवासक्तचित्तो रागादिवर्जितः ।
शिवार्पणधिया कुर्याद् यथारुचि जपादिकम्॥५३॥
मुमुक्षूणां यथा शम्भुः संसारभयमोचकः।
तथा षडक्षरो मन्त्रः संसारभयनाशकः॥५४॥
षडक्षरेण मन्त्रेण भक्त्या परमया युतः।
सम्यग् लिङ्गार्चनं कुर्यान्मत्सामीप्यमवाप्नुयात्॥५५॥

साधक यदि इस सिद्ध मन्त्र से कुछ चाहता है, तो वह अपनी अभीष्ट कामना को प्राप्त कर सकता है। रोग की निवृत्ति के लिये इस मन्त्र का दो हजार बार जप करना चाहिये। आयु की कामना वाला मन्त्र का तीन हजार बार जप करे॥५०॥ हे महादेवि! अपनी उत्तरोत्तर समृद्धि के लिये तीन मास पर्यन्त नित्य इस मन्त्र का एक हजार बार जप करना चाहिये। ऐसा करने से उसकी सारी कामनाएं पूरी हो जाती हैं॥५१॥हे देवि! मन्त्र का एक करोड़ बार जप करने से जपकर्ता स्वयं साक्षात् शिव ही हो जाता है। भोग और मोक्ष की इच्छा वाले व्यक्ति को इसका सदा जप करना चाहिये॥५२॥

मुमुक्षु व्यक्ति शिव में मन लगाकर, राग-द्वेष आदि का परित्याग कर सब कुछ शिव को अर्पित कर देने की बुद्धि से अपनी शक्ति के अनुसार जप आदि करे॥५३॥ मोक्ष को चाहने वाले व्यक्तियों को जैसे शिव संसार के सभी प्रकार के भय से मुक्त कर देते हैं, उसी तरह से षडक्षर मन्त्र भी संसार के सभी भयों का नाश करने वाला है॥५४॥ श्रेष्ठ भक्ति से सम्पन्न व्यक्ति षडक्षर मन्त्र से विधिपूर्वक भलीभाँति शिवलिंग का अर्चन करता है, तो उसे अवश्य शिव का सामीप्य प्राप्त होता है॥५५॥

लिङ्गार्चनस्य यावन्तो नियमाः कथितास्तु ते।
षडक्षरार्चनविधेः कोटयंशेनापि नो समाः॥५६॥
अनेन मनुना लिङ्गं सम्पूज्याष्टशतं जपेत्।
तेन सर्वे महामन्त्रा जप्ता एव न संशयः॥५७॥
अनेन मन्त्रितं भस्म धारयेत् स्नानपूर्वकम्।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति मानवः॥५८॥
सूक्ष्मा क्रियाऽधिकफलं सर्वसाधारणं शिवे।
विनाऽऽयासेन संसिद्धिः पञ्चाक्षरमहामनोः॥
अस्मादायासबहुलाः सर्वे मन्त्राश्च तत्क्रियाः॥५९॥
अतो मन्त्रानशेषांश्च त्यक्त्वा क्लेशाधिकान् परान्।
जपेत् षडक्षरं देवि सुलभं सर्वसिद्धिदम्॥६०॥

अक्षमालिकालक्षणम्

अथाक्षमालिकायाश्च लक्षणं सविधानतः।
वक्ष्ये शृणु वरारोहे मणीनां च विशेषतः॥६१॥

शिवलिंग की पूजा के तुमको मैंने जितने भी नियम बताये हैं, वे सब षडक्षर मन्त्र से शिवपूजन करने के करोड़वें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं॥५६॥ इस मन्त्र से शिवलिंग की पूजा करने के उपरान्त यदि व्यक्ति इसका १०८ बार जप करता है, तो उसने सभी महामन्त्रों का जप कर लिया है, ऐसा मानने में संदेह को कोई स्थान नहीं है॥५७॥ इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म को शरीर पर धारण करने से और उससे स्नान करने से मनुष्य गंगा आदि सभी तीर्थों में स्नान का पुण्य प्राप्त कर लेता है॥५८॥ हे शिवे! पंचाक्षर महामन्त्र के जप की यह महिमा है कि इसमें क्रिया तो सूक्ष्म (संक्षिप्त) ही होती है, किन्तु उसका फल अधिक मिलता है। इसके जप का सर्वसाधारण, अर्थात् स्त्री शूद्र आदि को भी अधिकार है। इससे अनायास सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इससे भिन्न जितने भी मन्त्र हैं, उनके अनुष्ठान में मनुष्य को बहुत आयास (मेहनत) करना पड़ता है॥५९॥ हे देवि! इसलिये अधिक क्लेशप्रद अन्य सभी मन्त्रों को छोड़कर अत्यन्त सुलभ और सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाले इस मन्त्र का जप करना चाहिये॥६०॥

हे [११]वरारोहे! अब मैं तुमको विधिपूर्वक अक्षमाला (जप करने की माला) के लक्षण बताने जा रहा हूँ और विशेष रूप से मणियों (दानों) का भी वर्णन करूँगा। उसे तुम सावधानी से सुनो॥६१॥ जपमाला के लिये बिना टूटे हुए, चिकने, नये, देखने

११. "वरारोहा मत्तकाशिन्युत्तमा वरवर्णिनी" (२।६।४) अमरकोश में श्रेष्ठ स्त्रियों के लिये इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

अभङ्गुरा दृढाः स्निग्धा नवा दृष्टिप्रियाः शुभाः।
श्रेष्ठा हि जपमालार्थं रुद्राक्षाः केसरान्विताः॥६२॥
यदुन्नतं मणौ वक्त्रं पृष्ठं निम्नं स्थिरासनम्।
मुखं पृष्ठं विदित्वैवं मालिकां घटयेत् सुधीः॥६३॥
त्रिवृता पट्टसूत्रेण कार्पासेनाथवा पुनः।
वक्त्रं वक्त्रेण सम्प्रोत्य पृष्ठं पृष्ठेन योजयेत्।
मूले स्थूलानि सम्प्रोत्य सूक्ष्माण्यग्रे नियोजयेत्॥६४॥
गोपुच्छवलयाकारां कृत्वा मालां सुशोभनाम्।
मणीनामन्तरे ग्रन्थिः कर्तव्या वर्तनद्वयी॥६५॥
न स्यात् परस्परं घर्षो यथा कुर्वीत साधकः।
अन्योन्यघर्षणं देवि भवेज्जपविनाशकृत्॥६६॥
मेर्वाख्यं योजयेदेकं मणिं मूलाग्रमन्तरा।
परिवृत्य जपेन्मेरुं प्रदक्षिणपरिक्रमात्॥६७॥

में सुन्दर, शुभ फल को देने वाले, [१२]केसर से युक्त रुद्राक्ष श्रेष्ठ माने जाते हैं॥६२॥ मणि में जो ऊँचा भाग हो, उसे मुख तथा स्थिर रूप से बैठने वाले निम्न भाग को पृष्ठ कहते हैं। इन लक्षणों से मुख और पृष्ठ भाग को जान कर बुद्धिमान व्यक्ति माला गूँथे॥६३॥ रेशमी धागे को अथवा सूत के धागे को तीन बार लपेट कर उसमें मणि के मुँह में मुँह को और पृष्ठ से पृष्ठ को मिला कर माला गूँथनी चाहिये। माला के मूल भाग में बड़ी मणियों को और बाद में सूक्ष्म मणियों को पिरोना चाहिये॥६४॥ गाय की पूँछ की जैसी गोलाई वाली सुन्दर माला गूँथी जाती है। प्रत्येक मणि के बीच में दो मोड़ की ग्रन्थि (गाँठ) बनानी चाहिये॥६५॥ हे देवि! साधक को चाहिये कि माला ऐसी गूँथे कि उसकी मणियों की आपस में रगड़ न हो। मणियों का आपस में रगड़ खाना जप के फल को नष्ट कर देता है॥६६॥ जपमाला के दोनों मूलों को जोड़कर बीच में मेरु नाम की एक बड़ी मणि की योजना करनी चाहिये। इस मेरु का प्रदक्षिणा के क्रम के अनुसार बिना उल्लंघन किये ही जप करना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि शिवलिंग की प्रदक्षिणा करते समय जैसे शिवनिर्माल्य का उल्लंघन नहीं किया जाता, उसी तरह से जपमाला से जप करते समय मेरु का भी उल्लंघन नहीं करना चाहिये॥६७॥ मेरु का उल्लंघन किये बिना फिर मूल भाग से ही जप

---

१२. रुद्राक्ष के दानों पर उभड़ी हुई बिन्दियों को ही यहा केसर कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि रुद्राक्ष के दाने घिसे हुए नहीं होने चाहिये।

पुनर्मूलं समारभ्य न कुर्यान्मेरुलङ्घनम्।
एवं कृत्वाऽक्षमालां तु संस्कुर्याद् देशिकोत्तमः ॥६८॥
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैरभिषिच्य यथाविधि।
जपेत् पञ्चाक्षरं मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥६९॥
वर्णात्मकं ततो ध्यात्वा दद्याच्छिष्याय देशिकः।
एवं कृत्वाऽक्षमालां च जपेन्नित्यं न धारयेत् ॥७०॥
न क्षिपेदशुचिस्थाने न स्पृशेद् वामपाणिना।
जपकाले जपं कृत्वा गोपनीया प्रयत्नतः ॥७१॥
न दर्शयेदक्षमालां दीक्षाहीननृणां प्रिये।
प्रमादाद् दर्शनं कुर्यात् पुनः संस्कारमाचरेत् ॥७२॥
एवं संस्कृतया चाक्षमालया नियतः शुचिः।
संकल्प्य च जपेन्नित्यं यावज्जीवं विधानतः ॥
स एव पुरुषश्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥७३॥

पञ्चाक्षरीविद्यामहिमा

पञ्चाक्षरीजापको हि यत्र तिष्ठति पार्वति।
सादरं तत्र तिष्ठामि मम प्रियतरो यतः।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य जपेत् पञ्चाक्षरं शुभम् ॥७४॥

आरंभ करे। देशिकोत्तम (आचार्यप्रवर) इस तरह से माला बनाकर फिर उसका संस्कार करे ॥६८॥ जपमाला के संस्कार मे लिये उसे पहले पंचामृत और पंचगव्य से अभिषिक्त किया जाता है। तब उस माला पर पंचाक्षर मन्त्र का १००८ बार जप किया जाता है ॥६९॥ तब वर्णात्मक शिव का ध्यान कर आचार्य उस माला को शिष्य को दे। इस प्रकार संस्कृत अक्षमाला से केवल जप किया जाता है। इसे धारण न करे ॥७०॥ इस संस्कृत जपमाला को अपवित्र स्थान पर कभी न रखे। इसे बायें हाथ से कभी स्पर्श न करे। जप के समय और जप करने के उपरान्त इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये ॥७१॥ हे प्रिये! दीक्षा से रहित व्यक्तियों को इस जपमाला को कभी न दिखावे। यदि प्रमाद (लापरवाही) के कारण किसी ने इसको देख लिया है, तो उस माला का पुनः संस्कार करना चाहिये ॥७२॥ इस प्रकार की संस्कृत माला से जो व्यक्ति नियमित रूप से पवित्र भाव से संकल्प-पूर्वक जीवन पर्यन्त विधिपूर्वक जप करना रहता है, वही पुरुष श्रेष्ठ भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त कर लेता है ॥७३॥

हे पार्वति! पंचाक्षर मन्त्र का जप करने वाला साधक जहाँ कहीं रहता है, वहाँ मैं आदरपूर्वक रहता हूँ, क्योंकि ऐसा व्यक्ति मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसलिये शिवभक्त को चाहिये कि सब कुछ छोड़ कर वह इस कल्याणकारी पंचाक्षर मन्त्र का जप करे ॥७४॥

वेदाः साङ्गाः पुराणानि मन्त्राश्च बहवस्तथा।
आगमा विविधा देवि विद्यास्थानानि यानि च।
पञ्चाक्षरे प्रलीयन्ते निर्गच्छन्ति पुनस्ततः ॥७५॥
एतां पञ्चाक्षरीं विद्यां हृद्यां मम समाश्रिताः।
कलावपि प्रमुच्यन्ते महात्मानो दृढव्रताः ॥७६॥
पञ्चाक्षरे महामन्त्रे स्थितेऽपि कलिजा नराः।
पतन्ति नरकं मूढा मायया परिमोहिताः ॥७७॥
महती खलु सा माया दुस्तरा त्रिगुणात्मिका।
धर्मार्थकामैस्त्रिविधैर्जगद्व्यामोहकारिणी ॥७८॥
मदर्पणधिया येषां कर्मारम्भफलं शिवे।
मदेकशरणा लोके मायामेतां तरन्ति ते ॥७९॥
अकामचित्तशुद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्।
अनेकजन्मनामन्ते मयि भक्तिर्दृढा भवेत् ॥८०॥

हे देवि! अपने छः अंगों के साथ चारों वेद [१३]सभी पुराण और नाना प्रकार के मन्त्र, नाना प्रकार के आगम और अन्य भी जो विद्यास्थान हैं, वे सब इस पंचाक्षर मन्त्र में लीन हो जाते हैं और पुनः वहीं से निकलते भी हैं॥७५॥ मेरी इस मनोहारिणी पंचाक्षरी विद्या का आश्रय लेने वाले दृढ संकल्प वाले महात्मा गण कलिकाल में भी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं॥७६॥ कलिकाल के मूढ मनुष्य पंचाक्षर महामन्त्र के रहते हुए भी माया से पूरी तरह से मोहित होकर उसका जप न करने के कारण नरक में गिरते हैं॥७७॥ भगवान् शिव की यह माया सत्त्व, रज और तम नामक तीन गुणों के कारण अतीव दुस्तर है, अर्थात् इन प्राकृतिक गुणों के कारण इसका पार पाना कठिन है। यह माया धर्म, अर्थ और काम में ही सारे जगत् को लगा कर उनको छलती रहती है॥७८॥ हे शिवे! जो शिवभक्त मुझे सारे फल समर्पित करने के अभिप्राय से ही कर्म करते रहते हैं, ऐसे एकमात्र मेरी शरण में आये व्यक्ति इस संसार में मेरी इस दुस्तर माया का पार पा सकते हैं॥७९॥ किसी भी कर्मफल की कामना न रहने से जिनके चित्त शुद्ध हो गये हैं, श्रौत और स्मार्त धर्मों का जो पालन करते हैं, ऐसे शिवभक्तों की अनेक जन्मों के उपरान्त शिव में भक्ति दृढ होती है॥८०॥ जिन शिवभक्तों में मेरा अनुग्रह प्राप्त

---

१३. शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दःशास्त्र और ज्यौतिष ये छः वेदांग है। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चार वेद हैं। १८ महापुराण और १८ उपपुराण— ये सभी पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं।

येषां दृढा भवेद् भक्तिर्मदनुग्रहकारिणी।
तेषां संजायते श्रद्धा मन्त्रे पञ्चाक्षरे शुभे॥८१॥

पुनः षडक्षरमन्त्रमहिमा

नगानां हि यथा मेरुः सरसां सागरो यथा।
सरितां च यथा गङ्गा पशूनां गौर्यथा वरा॥८२॥
मणीनां कौस्तुभो यद्वल्लोहानां काञ्चनं यथा।
तथा षडक्षरपरो मानुषेषु वरः प्रिये॥८३॥
तस्मात् सर्वक्रियारम्भान् फलानि च विशेषतः।
त्यक्त्वा षडक्षरपरो भवेन्नित्यं विचक्षणः॥८४॥
एतावद्धि शिवज्ञानमेतावत् परमं पदम्।
यस्योन्नमः शिवायेति सदा वाचि प्रवर्तते॥८५॥
सकृत् प्रसन्नान्मोहाद्वा शिवायेत्यक्षरत्रयम्।
उच्चरेद्यस्तस्य विघ्नाः सर्वे शान्तिं प्रयान्ति हि।
प्रणवादिनमोऽन्तं चेत् किम्पुनः सर्वसिद्धिदम्॥८६॥

कराने वाली यह भक्ति दृढ हो जाती है, उनकी कल्याणकारी पंचाक्षर मन्त्र में श्रद्धा पैदा हो जाती है॥८१॥

पर्वतों में जैसे मेरु सर्वश्रेष्ठ है, जलाशयों में जैसे सागर, नदियों में जैसे गंगा और पशुओं में जैसे गाय सर्वश्रेष्ठ है॥८२॥ हे प्रिये! मणियों में जैसे कौस्तुभ मणि, धातुओं में जैसे सुवर्ण सर्वश्रेष्ठ है, उसी तरह से मनुष्यों में वही श्रेष्ठ है, जो कि इस मन्त्र को सर्वश्रेष्ठ मानता है, उसके ही जप में सदा तत्पर रहता है॥८३॥ इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह सभी प्रकार के भाँति भाँति के कर्मकाण्डों का और उनसे मिलने वाले फलों का परित्याग कर सदा षडक्षर मन्त्र की उपासना में लगा रहे॥८४॥ शिवज्ञान का सार इतना ही है और परम पद की प्राप्ति भी यही है कि व्यक्ति की वाणी में "ॐ नमः शिवाय" यह षडक्षरी मन्त्र सदा गूँजता रहे॥८५॥ प्रसन्नतापूर्वक अथवा प्रमादवश भी जो व्यक्ति 'शिवाय' इन तीन अक्षरों का उच्चारण करता है, तो उसके सारे विघ्न निश्चय ही शान्त हो जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति इन तीन अक्षरों के पहले प्रणव का और अन्त में नमः पद का उच्चारण करता है, तो उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है, इसमें कहना ही क्या है॥८६॥

जपमहिमा

सविधानं गुरोर्लब्ध्वा जपेद् यः सततं नरः।
तस्य हस्तस्थितं विद्धि मत्पदं सम्पदां पदम्॥८७॥

रहस्यं गोपनीयम्

इदं रहस्यं पापघ्नं वेदानां सारमुत्तमम्।
गोपनीयं महादेवि तव प्रीत्या प्रकीर्तितम्॥८८॥
नास्तिकाय कृतघ्नाय भक्तिहीनाय जातुचित्।
न वक्तव्यमिदं शास्त्रं श्रद्धाहीनाय शाङ्करि॥८९॥

योग्याय वक्तव्यम्

शिवभक्ताय शान्ताय विशेषादास्तिकाय च।
वक्तव्यं हि प्रयत्नेन गुरुवाक्यरताय च॥९०॥
एवमुक्तं समासेन पञ्चाक्षरमहामनोः।
माहात्म्यं सविधानं ते किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥९१॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे पञ्चाक्षरमन्त्रस्वरूपनिरूपणं नाम तृतीयः पटलः

जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरु से इस मन्त्र को प्राप्त कर सदा उसका जप करता रहता है, उसके हाथ में समस्त संपत्तियों को देने वाला मेरा पद आ ही गया है, ऐसा समझो॥८७॥

हे महादेवि ! तुम्हारी प्रीति के लिये यहाँ जो कुछ मैंने बताया है, वह अत्यन्त गोपनीय है, सभी पापों का नाश करने वाला है, सारे वेदों का सार इसमें आ गया है, इसीलिये इसे गुप्त रखना चाहिये॥८८॥ हे पार्वति ! जो व्यक्ति नास्तिक है, कृतघ्न है, भक्तिभाव से और श्रद्धा से रहित है, ऐसे व्यक्ति को कभी भी इस शास्त्र का उपदेश नहीं करना चाहिये॥८९॥

जो व्यक्ति शिवभक्त है, शान्त चित्त वाला है, विशेष रूप से जो आस्तिक है और गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला है, ऐसे शिवभक्त को प्रयत्नपूर्वक इसका उपदेश करना चाहिये॥९०॥ इस प्रकार मैंने पंचाक्षर महामन्त्र के जप की संक्षेप में विधि और माहात्म्य भी तुम्हें बताया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो॥९१॥

इस प्रकार श्रीसूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह पंचाक्षर मन्त्र के स्वरूप का निरूपण करने वाला तीसरा पटल समाप्त हुआ॥३॥



चतुर्थः पटलः

देव्युवाच

सर्वसिद्धिप्रदा मन्त्रास्त्वयोक्ता बहवः पुरा।
तेषु सर्वेषु देवेश कुतः श्रेष्ठः षडक्षरः॥१॥
अस्य षड्वर्णहेतुत्वं सञ्जातं केन हेतुना।
एतत्सर्वं समासेन कृपया वद मे प्रभो॥२॥

शिव उवाच

सम्यक् पृष्टमिदं देवि मन्त्रगोप्यं सुदुर्लभम्।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहिता॥३॥

प्रणवः पञ्चविधः

सर्वमन्त्रेषु मुख्योऽयमाद्यः प्रणव ईरितः।
सर्वेषामेव मन्त्राणां मातृस्थानमितीरितम्॥४॥
सोऽयं पञ्चविधः प्रोक्तः साकल्यादिप्रभेदतः।
साकल्यं प्रथमं प्रोक्तं शाम्भवं तु द्वितीयकम्॥५॥

देवी का प्रश्न—

हे देवेश! पहले आपने सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाले बहुत से मन्त्रों का उपदेश किया है। उन सबमें यह षडक्षर मन्त्र किस लिये सर्वश्रेष्ठ माना गया है॥१॥ हे प्रभो! किस कारण से इस मन्त्र में छः वर्णों की स्थिति मानी गई है? कृपा कर के यह सब मुझे आप बताइये॥२॥

शिव का उत्तर—

हे देवि! यह तुमने ठीक प्रश्न किया है। इस मन्त्र का रहस्य अत्यन्त गोपनीय है और यह अत्यन्त दुर्लभ है। तो भी ये सारी बातें मैं तुमको बताऊँगा। तुम उसे सावधानी से सुनो॥३॥ षडक्षर मन्त्र का पहला अक्षर प्रणव है। यह सभी मन्त्रों में प्रधान कहा गया है। इसको सभी मन्त्रों का मातृस्थान माना गया है, अर्थात् सभी मन्त्रों की उत्पत्ति इसी से होती है॥४॥ साकल्य आदि के भेद से यह प्रणव पाँच प्रकार का कहा गया है। इनमें साकल्य पहला भेद और शांभव दूसरा भेद है॥५॥ सौख्य तीसरा भेद कहा गया है और सावश्य चौथा भेद है।

सौख्यं तृतीयमित्युक्तं सावश्यं तु चतुर्थकम्।
सायुज्यं पञ्चमं प्रोक्तं भेदमेषां शृणु क्रमात्॥६ ॥
सद्यादिपञ्चवक्त्रेषु जातं प्रणवपञ्चकम्।

त्रिवर्णः प्रणवः

अकारो दक्षिणो ज्ञेयो वामगः स्यादुकारकः॥७ ॥
मकारो मध्यगः प्रोक्तस्त्रिवर्णः प्रणवो भवेत्।
तन्मध्ये तु हकारः स्यात् साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः॥८ ॥
आद्यस्वरः पञ्चमेन वर्गान्तेन च संयुतः।
वियद्बीजसमायुक्तः प्रणवः परिकीर्तितः॥९ ॥
अकारो ब्रह्मबीजं स्यादुकारो विष्णुबीजकम्॥
मकारो रुद्रबीजं च तेषां देहात्मकः शिवः॥१०॥
अकारः प्रकृतिश्चैवमुकारः पुरुषात्मकः।
तन्नियन्ता मकारः स्यान्नादः साक्षात् सदाशिवः॥११॥
इच्छाशक्तिरकारः स्यात् क्रियाशक्तिरुकारकः।
ज्ञानशक्तिर्मकारः स्यान्नादः साक्षात् परः शिवः॥१२॥

सायुज्य पाँचवाँ भेद कहा गया है। अब इन पाँचों भेदों के तुम लक्षण सुनो॥६॥ सद्योजात आदि पांच मुखों से ऊपर बताये गये पांच प्रणवों की उत्पत्ति होती है।

अकार की दक्षिण मुख से, उकार की वाम मुख से उत्पत्ति मानी गई है॥७॥ मकार की उत्पत्ति मध्य (ऊर्ध्व) मुख से मानी गई है। इस प्रकार तीन वर्णों वाला प्रणव बनता है। इसके साथ हकार को जोड़ देने से बना हुआ प्रणव कल्याणकारी है, मोक्ष का प्रदाता है॥८॥ आद्यस्वर अकार के साथ पंचम स्वर उकार को वर्ग (पवर्ग) के अन्त के मकार को और वियद्बीज हकार को जोड़ने से भी प्रणव बनता है॥९॥ प्रणव का अकार ब्रह्मा का, उकार विष्णु का और मकार रुद्र का बीज है। भगवान् शिव का देह इन तीनों के मिलने से बनता है॥१०॥ प्रणव का अकार प्रकृति स्वरूप और उकार पुरुष स्वरूप है। इन दोनों का नियमन करने वाला मकार नाद स्वरूप है। यह नाद साक्षात् सदाशिव ही है॥११॥ अकार इच्छा शक्ति, उकार क्रिया शक्ति और मकार ज्ञान शक्ति स्वरूप है और नाद साक्षात् पर शिव ही है॥१२॥ अकार लाल वर्ण का,

अकारो रक्तवर्णश्च श्यामल: स्यादुकारक:।
मकार: स्फटिकाभ: स्याद् वर्णातीत: शिवाक्षर: ।।१३।।
अकारो राजस: प्रोक्त उकारस्तामसात्मक:।
मकार: सात्त्विको ज्ञेयो नाद: स्यात्त्रिगुणात्मक: ।।१४।।
अकारो ब्रह्मरूप: स्यादुकारो विष्णुरूपक:।
रुद्रात्मको मकार: स्यादोङ्कारस्तु सदाशिव:।
नाद: परशिवो ज्ञेय: पञ्चदेवात्मक: स्मृत: ।।१५।।
अकारं बिन्दुरूपं च जाग्रत्स्थमिति भावयेत्।
स्वप्नस्थमथ जानीयादुकारं नादरूपकम् ।।१६।।
सुषुप्तिस्थं मकारं च कलारूपं वरानने।
ॐकारं शक्तिरूपं च तुर्यास्थमिति भावयेत् ।।१७।।
तुर्यातीतस्थितं विद्याच्छिवं सर्वात्मकं परम्।
योगिनां साधनमिदमोमित्येकाक्षरं परम् ।।१८।।

प्रणवपञ्चकोद्धार:

आद्यं पञ्चमसंयुक्तं नादो मान्तेन संयुत:।
साकल्यप्रणवो ज्ञेय: पूर्ववक्त्रसमुद्भव: ।।१९।।
अ,उ,म,ह=इति।

उकार श्याम वर्ण का और मकार स्फटिक के समान श्वेत वर्ण का है। शिवाक्षर, अर्थात् नाद सभी वर्णों से अतीत है।।१३।। अकार राजस कहा गया है। उकार तामस गुण से और मकार सात्त्विक गुण से सम्पन्न है। नाद में तीनों गुण विद्यमान हैं।।१४।। अकार ब्रह्मरूप, उकार विष्णुरूप, मकार रुद्रस्वरूप, ॐकार सदाशिवस्वरूप और नाद परशिवात्मक है। इस प्रकार प्रणव में ये पाँचों देवता निवास करते हैं।।१५।। बिन्दुरूप अकार की जाग्रत् अवस्था के रूप में और नाद रूप उकार की स्वप्नावस्था के रूप में भावना करनी चाहिये।।१६।। हे वरानने! कलारूप मकार की सुषुप्ति अवस्था के रूप में और शक्तिरूप ॐकार की तुर्यावस्था के रूप में भावना करे।।१७।। इन सबके समष्टिस्वरूप शिव की तुर्यातीत अवस्था में स्थिति मान कर भावना करे। इस प्रकार यह एकाक्षर प्रणव (ॐ) योगियों के लिये सभी अवस्थाओं में ध्यान का साधन बनता है।।१८।।

आद्य स्वर अकार को पंचम स्वर उकार से संयुक्त कर जब नादात्मक हकार को म के अन्त में जोड़ते हैं, तो यह पूर्व मुख से उत्पन्न साकल्य प्रणव कहलाता है।।१९।। इस मन्त्र का स्वरूप है–अ,उ,म,ह।

स्वरादिपञ्चमयुतं षष्ठान्तं नादसंयुतम्।
तृतीयसहितं देवि शाम्भवं दक्षिणोद्भवम्॥२०॥
अ,उ,म,ह,इ=इति।

वर्गान्तं स्वरवर्णादिपञ्चमं नादसंयुतम्।
तथा स्वरयुतं सौख्यं पश्चिमाननसम्भवम्॥२१॥
अ,उ,म,ह,इ=इति।

आद्यं पञ्चमयुक्तं च नादो वर्गान्तसंयुतम्।
एकादशयुतं प्रोक्तं सावश्यं चोत्तरोद्भवम्॥२२॥
अ,उ,म,ह,ए=इति।

अकारः पञ्चमोपेतो वर्गान्तो नादसंयुतः।
चतुर्दशस्वरोपेतं सायुज्यं चोर्ध्वसम्भवम्॥२३॥
अ,उ,म,ह,औ=इति।

प्रणवपञ्चकस्वरूपम्

साकल्यं रक्तवर्णं च छन्दोऽनुष्टुप् तथा ऋषिः।
सनत्कुमारो भूतं च पार्थिवं समुदीरितम्॥२४॥

हे देवि! स्वर के आदि वर्ण अकार को पंचम स्वर उकार से जोड़ कर षष्ठ वर्ग (पवर्ग) के अन्तिम वर्ण मकार और नादात्मक हकार से जोड़ कर अन्त में तृतीय स्वर (इकार) को जोड़ने पर दक्षिण मुख से उद्भूत शाम्भव प्रणव बनता है॥२०॥ इस मन्त्र का स्वरूप है – अ,उ,म,ह,इ।

स्वर वर्ण के आदि अकार और पंचम उकार को वर्गान्त मकार के साथ और नाद (हकार) और स्वर (इकार) के साथ जोड़ने से पश्चिम मुख से उत्पन्न सौख्य प्रणव बनता है॥२१॥ इसका स्वरूप यह है – अ,उ,म,ह,इ।

आद्य स्वर अकार को पंचम स्वर उकार से जोड़ कर तथा इनके आगे वर्गान्त मकार और नाद (हकार) को जोड़ कर इनके अन्त में एकादश स्वर एकार को संयुक्त करने पर उत्तर मुख से उत्पन्न सावश्य प्रणव का उद्धार होता है॥२२॥ इसका स्वरूप यह है – अ,उ,म,ह,ए।

जब अकार पंचम स्वर उकार से और वर्गान्त मकार नाद (हकार) से संयुक्त होता है और अन्त में चतुर्दश स्वर औ को जोड़ दिया जाता है, तो इससे ऊर्ध्व मुख से उत्पन्न सायुज्य प्रणव का उद्धार होता है॥२३॥ इसका स्वरूप यह है – अ,उ,म,ह,औ।

इनमें पहला साकल्य प्रणव रक्त (लाल) वर्ण का है। इसका छन्द अनुष्टुप् तथा ऋषि सनत्कुमार हैं। भूतों में पृथिवी से इसका संबन्ध बताया गया है॥२४॥ इसी तरह से यह

कर्म तत्त्वं तथेशानः प्रोक्तमस्याधिदैवतम्।
मात्राचतुष्कसहितं बीजं सर्वार्थसिद्धिदम्॥२५॥
अञ्जनाभं शाम्भवं च त्रिष्टुप् छन्द उदीरितम्।
भारद्वाज ऋषिर्भूतं सलिलं कर्तृतत्त्वकम्॥२६॥
ईश्वरस्त्वधिदैवं च पञ्चमात्रासमन्वितम्।
सर्वसिद्धिप्रदं देवि साधकानामिदं परम्॥२७॥
सौख्यं गोक्षीरसदृशं बृहतीच्छन्द ईरितम्।
विश्वामित्र ऋषिश्चैव भूतं तेज उदीरितम्॥२८॥
तत्त्वं समूर्तमाख्यातं ब्रह्मा चास्याधिदैवतम्।
पञ्चमात्रात्मकं बीजमखिलार्थप्रसाधकम्॥२९॥
कुङ्कुमाभं तु सावश्वं जगतीच्छन्द उच्यते।
ऋषिर्गौतम इत्युक्तो वायुर्भूतमुदीरितम्॥३०॥
अमूर्तं तत्त्वमाख्यातमीशस्तस्याधिदेवता।
पञ्चमात्रासमायुक्तं सर्ववश्यकरं शुभम्॥३१॥
सायुज्यं स्फटिकप्रख्यं गायत्रीच्छन्द ईरितम्।
अगस्त्यो हि ऋषिश्चैव वियद्भूतमुदीरितम्॥३२॥
शिवतत्त्वं समाख्यातमधिदैवं सदाशिवः।
पञ्चमात्रात्मकं बीजं सायुज्यफलसाधकम्॥३३॥

कर्मसादाख्यात्मक है और इसके देवता ईशान हैं। यह चार मात्रा वाला बीज सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला है॥२५॥ हे देवि! दूसरा शांभव प्रणव अंजन के समान श्याम वर्ण का है। इसका छन्द त्रिष्टुप् बताया गया है। ऋषि भारद्वाज और भूतों में जल से संबद्ध है। यह कर्तृसादाख्य से संयुक्त है और इसके देवता ईश्वर हैं। पांच मात्राओं से समन्वित यह बीज साधकों के लिये सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है॥२६-२७॥ तीसरा सौख्य प्रणव गाय के दूध के समान श्वेत वर्ण का है। इसका छन्द बृहती और ऋषि विश्वामित्र है। भूतों में तेज (अग्नि) से और तत्त्वों में समूर्तसादाख्य से यह संबद्ध है। इसके देवता ब्रह्मा हैं। यह पंचमात्रात्मक बीज समस्त प्रयोजनों का साधक माना गया है॥२८-२९॥ चौथा सावश्य प्रणव कुंकुम के समान वर्ण वाला है। इसका छन्द जगती और ऋषि गौतम कहे गये हैं। भूतों मे वायु से और तत्त्वों में अमूर्तसादाख्य से यह संबद्ध है। इसके देवता ईश्वर हैं। पांच मात्राओं से संवलित यह बीज कल्याणकारी और सबको अपने वश में करने में समर्थ है॥३०-३१॥सायुज्य नाम का पाँचवां प्रणव स्फटिक सदृश वर्ण वाला है। इसका छन्द गायत्री और ऋषि अगस्त्य हैं। भूतों में वियत् (आकाश) और तत्त्वों में शिवसादाख्य से यह संबद्ध है। इसके देवता सदाशिव हैं। यह पांच मात्रा वाला बीज सायुज्य फल का साधक है॥३२-३३॥ प्रणव की इतनी

तस्मादिदं समस्तानामादिबीजमुदीरितम्।
अनेन सहितो मन्त्रः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥३४॥

पञ्चाक्षरः षडक्षरश्च मन्त्रः

पञ्चाक्षरो महामन्त्रः प्रणवेन युतः शिवे।
षडक्षर इति प्रोक्तो मन्त्रराजाह्वयः परः ॥३५॥
ॐकारो मम देहः स्यान्नकाराद्यास्तथैव च।
सद्यादिपञ्चवक्त्राणि क्रमादेवं वरानने ॥३६॥
पञ्चब्रह्मात्मको मन्त्रः प्रणवाद्यः षडक्षरः।

षडक्षरस्य षट्तत्त्वरूपत्वम्

अस्य षट्तत्त्वरूपं तु सुसूक्ष्मं श्रूयतां क्रमात् ॥३७॥
निवृत्तिमार्गतो वक्ष्ये सर्वतत्त्वार्थशोभनम्।
यकारः पूर्णतायुक्तो वाकारो नित्यवाचकः ॥३८॥
आनन्दः स्याच्छिकारस्तु चिद्रूपो हि मकारकः।
सत्यरूपो नकारः स्यान्मिश्रात्मा प्रणवो भवेत् ॥३९॥
यकारः परसंज्ञः स्याद् वाकारो गूढरूपकः।
शरीरस्थः शिकारश्च लिङ्गक्षेत्रं मकारकः।
अनादिरूपवान् नश्च प्रणवो हि महान् स्मृतः ॥४०॥

सारी विशेषताओं के रहने से ही यह समस्त मन्त्रों का आदि कारण कहा गया है। इस प्रणव से संयुक्त होकर मन्त्र सभी मन्त्रों में अति उत्तम बन जाता है॥३४॥

हे शिवे! पंचाक्षर महामन्त्र जब प्रणव से संयुक्त होता है, तो इसे ही श्रेष्ठ षडक्षर मन्त्रराज के नाम से कहा जाता है॥३५॥ हे वरानने! ॐ कार मेरा शरीर है। इसी तरह पंचाक्षर मन्त्र के नकार आदि पांच अक्षर क्रमशः मेरे सद्योजात आदि पांच मुख हैं॥३६॥ पंचब्रह्मात्मक यह पंचाक्षर मन्त्र प्रणव के प्रारंभ में जुड़ जाने पर षडक्षर मन्त्र बन जाता है।

इसका अत्यन्त सूक्ष्म छः तत्त्वों वाला स्वरूप अब मैं बताता हूँ, उसे सुनो॥३७॥ इसका यह स्वरूप निवृत्ति मार्ग से, अर्थात् विपरीत क्रम से बताऊँगा, जो कि सभी तत्त्वों से शोभित है। यकार पूर्णता से युक्त है और वकार नित्यता का वाचक है। शिकार आनन्दस्वरूप और मकार चिद्रूप है। नकार सत्यस्वरूप और प्रणव इन सबका मिला-जुला रूप है॥३८-३९॥ यकार पर संज्ञा वाला और वाकार गूढ रूप वाला है। शिव की स्थिति शरीर में और मकार का क्षेत्र लिंग है। नकार अनादि रूप वाला है और प्रणव महान् माना गया है॥४०॥ यकार पराशक्ति स्वरूप, वाकार

यकारस्तु पराशक्तिरादिशक्तिश्च वाक्षरः।
इच्छाशक्तिः शिकारः स्याज्ज्ञानशक्तिर्मकारकः।
क्रियाशक्तिर्नकारः स्यात् प्रणवो हि चिदात्मकः ॥४१॥
प्रथमं शिवसादाख्यममूर्तं च ततः परम्।
ततश्च मूर्तसादाख्यं ततो वै कर्तृनामकम् ॥४२॥
कर्मसादाख्यमपरं महारूपमनन्तरम्।
यादिप्रणवपर्यन्तमेवं ज्ञेयं वरानने ॥४३॥
प्रसादश्च चरश्चैव शिवलिङ्गं गुरुस्तथा।
आचारश्च महालिङ्गं यादितारान्तगोचरम् ॥४४॥
ऐक्यश्च शरणश्चैव प्राणलिङ्गी प्रसादकः।
माहेश्वरश्च भक्तश्च षट्स्थलात्मा षडक्षरः ॥४५॥
भावो ज्ञानं च सुमनो निरहङ्कार एव च।
बुद्धिश्चित्तं च भावादिहस्तरूपः षडक्षरः ॥४६॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वरश्च सदाशिवः।
तथा परशिवश्चैव षड्देवात्मा षडक्षरः ॥४७॥

आदिशक्ति स्वरूप, शिकार इच्छाशक्ति स्वरूप, मकार ज्ञानशक्ति स्वरूप, नकार क्रियाशक्ति स्वरूप और प्रणव चिच्छक्ति स्वरूप है॥४१॥ हे वरानने! प्रथम वर्ण शिवसादाख्य, उसके बाद का अमूर्तसादाख्य, तीसरा मूर्तसादाख्य, चौथा कर्तृसादाख्य और पाँचवां वर्ण कर्मसादाख्य है। अन्तिम प्रणव महासादाख्य कहलाता है। यहाँ यकार से प्रणव तक के अक्षरों का क्रम उलटा जानना चाहिये॥४२-४३॥ प्रसादलिंग, चरलिंग, शिवलिंग, गुरुलिंग, आचारलिंग और महालिंग– इन छः लिंगों की स्थिति विपरीत क्रम से यकार से लेकर प्रणव पर्यन्त मानी गई है॥४४॥ ऐक्यस्थल, शरणस्थल, प्राणलिंगी, प्रसाद, माहेश्वर और भक्तस्थल— इन छः स्थलों की भी स्थिति यथाक्रम प्रणव आदि अक्षरों में मानी गई है॥४५॥ सद्भाव, सुज्ञान, सुमनस्, निरहंकार, सद्बुद्धि और सुचित्त रूपी छः हस्तों की भी स्थिति यथाक्रम प्रणव आदि छः अक्षरों में मानी गई है॥४६॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और परशिव ये छः देवता प्रणव आदि षडक्षरों के हैं॥४७॥ हे शोभने! यकार स्फटिक के समान उज्ज्वल, वाकार श्वेत वर्ण का, शिकार

स्फटिकाभो यकारश्च वाकारः श्वेतवर्णकः।
नीलद्युतिः शिकारः स्याद् रत्नकान्तिर्मकारकः ॥४८॥
नकारः पीतवर्णः स्यात् तारो वर्णातिगः परः।
भूजलाग्निमरुद्व्योम्नां बीजान्येतानि शोभने ॥४९॥
प्रणवः सर्वतत्त्वानां बीजं कारणकारणम्।
तस्मादयं महामन्त्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः ॥५०॥
ईशो महेश्वरश्चैव शिवो विद्या तथैव च।
आत्मा परशिवश्चैव यादीनां तत्त्वतः क्रमात् ॥५१॥
यार्णं वेदसहस्राढ्यं वार्णं चाथर्वणं स्मृतम्।
शिकारः सामवेदः स्यान्मकारो यजुरुच्यते।
ऋग्वेदो हि नकारश्च ज्ञानात्मा प्रणवः स्मृतः ॥५२॥
तस्मादशेषवेदानां मन्त्राणां च विशेषतः।
मूलबीजमयं मन्त्रश्चिन्तारत्नमिवापरम् ॥५३॥
षडात्मकं जगत् सर्वं षडक्षरसमुद्भवम्।
स्थीयते लीयते चास्मिन् तस्माद् ब्रह्मात्मको मनुः ॥५४॥

नील कान्ति वाला, मकार रत्नकान्ति वाला, नकार पीत वर्ण का और श्रेष्ठ तार वर्णों से रहित है। यकार आदि वर्ण क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के बीज माने गये हैं॥४८-४९॥ प्रणव सभी तत्त्वों का बीज है, यह सभी कारणों का भी कारण है। इसलिये यह षडक्षर महामन्त्र सारे जगत् का प्रभु (स्वामी) है॥५०॥ ईश्वर, महेश्वर, शिव, विद्या, आत्मा और परशिव ये यकार आदि वर्णों के क्रमशः तत्त्वान्तर्गत देवता हैं॥५१॥ यकार वर्ण हजार वेदों से सुशोभित है, वकार वर्ण अथर्ववेद का, शिकार सामवेद का, मकार यजुर्वेद का, नकार ऋग्वेद का स्वरूप माना गया है। प्रणव अक्षर (ॐकार) साक्षात् ज्ञानस्वरूप है॥५२॥ इस तरह से यह षडक्षर मन्त्र समस्त वेदों का और विशेष रूप से समस्त मन्त्रों का मूल बीज है। यह महामन्त्र दूसरी चिन्तामणि ही है, अर्थात् चिन्तामणि जैसे संकल्प मात्र से सब पदार्थों को दे देती है, उसी तरह से यह मन्त्र भी समस्त कामनाओं को पूरा कर देंने वाला है॥५३॥ यह सारा जगत् छः प्रकार की वस्तुओं में विभक्त है, यह षडक्षर मन्त्र के छः अक्षरों से ही उत्पन्न हुआ है। इस षडक्षर मन्त्र में ही यह स्थित रहता है और इसी में लीन भी हो जाता है। इसलिये यह षडक्षर मन्त्र साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है॥५४॥

षडक्षरमन्त्रमहिमा

ॐकार: सर्वमन्त्राणां मन्त्रराज: प्रकीर्तित:।
पञ्चाक्षरयुतो देवि साक्षात् सायुज्यकारणम्॥५५॥
सर्वसिद्धिकरं शान्तं सर्वमन्त्रेषु गोपितम्।
विद्यानामादिभूतं च षडक्षरमिदं परम्॥५६॥
एवं षड्वर्णरूपं च षडक्षरमहामनुम्।
विद्धि गोप्यं वरारोहे दुर्लभं ज्ञातुमात्मनाम्॥५७॥

पञ्चाक्षरमन्त्रमहिमा

सर्वाणि पञ्चभूतानि तन्मात्राणां च पञ्चकम्।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि तथा कर्मेन्द्रियाणि च॥५८॥
पञ्चब्रह्माणि कृत्यानि पञ्चपञ्चात्मकानि च।
तानि सर्वाणि बोध्यानि पञ्चवर्णैर्महामनो:॥५९॥
लोके हि पञ्चधा यानि प्रसिद्धानि विशेषत:।
ज्ञेयानि तानि सर्वाणि पञ्चाक्षरमयानि हि॥६०॥

हे देवि! ॐकार (प्रणव) सभी मन्त्रों में मन्त्रराज है, अर्थात् सभी मन्त्रों का राजा कहा गया है। यह जब पंचाक्षर मन्त्र से संयुक्त हो जाता है, तो यह साक्षात् शिवसायुज्य को देने वाला है॥५५॥ यह षडक्षर मन्त्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है। सभी सिद्धियों को देने वाला है, परम शान्त स्वभाव का है, सभी मन्त्रों में यह विशेष रूप से गोपनीय है और सभी प्रकार की विद्याओं का भी यह आदि कारण है॥५६॥ हे वरारोहे! इस तरह से छ: वर्णों (अक्षरों) से समन्वित यह षडक्षर महामन्त्र अत्यन्त गोपनीय है। इसके रहस्य को समझ पाना साधारण जीव के लिये बहुत कठिन है॥५७॥

पृथ्वी आदि पंच महाभूत, गन्धतन्मात्रा आदि पांच तन्मात्राएँ, चक्षु-श्रोत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और हस्त-पाद आदि पांच कर्मेन्द्रियाँ॥५८॥ ईशान आदि पांच ब्रह्म मन्त्र, सृष्टि-स्थिति आदि पांच कृत्य— इस तरह इस संसार में पांच-पांच संख्या के जितने भी पदार्थ हैं, वे सब इस पंचाक्षर महामन्त्र के पांच अक्षरों से ही उत्पन्न हुए हैं॥५९॥ इस संसार में अन्य भी अनेक पदार्थ हैं, जो कि विशेष रूप से पांच-पांच की संख्या में विभक्त हैं। इन सबकी उत्पत्ति पंचाक्षर महामन्त्र के पांच अक्षरों से ही हुई है, ऐसा समझ लेना चाहिये॥६०॥ हे शिवे! इस तरह से इस संसार के

एवं पञ्चात्मकं सर्वं सुसूक्ष्मं कथितं शिवे।
ध्येयो मुमुक्षुभिर्नित्यमनेन मनुना शिवः ॥६१॥
चिराभ्यस्तेन योगेन षडक्षरमयेन च।
जीवन्मुक्त इति ज्ञेयो मदनुग्रहभाग् भवेत् ॥६२॥

अधिकारिविवेचनम्

इदं रहस्यं परमं गोप्यं कर्मान्तकारकम्।
न वक्तव्यं न वक्तव्यं शिवाचारविरोधिने ॥६३॥
दाम्भिकाय कृतघ्नाय विषयग्रस्तचेतसे।
चञ्चलाय च दुष्टाय व्रतभ्रष्टाय दुःखिने ॥
न दातव्यमिदं शास्त्रं देवान्तरपराय च ॥६४॥
अज्ञानादथवा लोभान्मोहाद्वा परमेश्वरि।
दीयते यदि मन्त्रोऽयमुभयोः पतनं भवेत् ॥६५॥
दातव्यं मयि भक्ताय मुक्तिकान्ताभिलाषिणे।
दृढव्रताय शिष्टाय लिङ्गनिष्ठारताय च ॥६६॥

अत्यन्त सूक्ष्म पंचात्मक सभी पदार्थों का वर्णन मैंने तुम्हारे सामने किया है। इस महामन्त्र से मोक्ष की इच्छा करने वाले व्यक्तियों को नित्य शिव का ध्यान करना चाहिये ॥६१॥ इस षडक्षर मन्त्र की सहायता से जो व्यक्ति चिरकाल तक योग का अभ्यास करता है, वह जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर लेता है, वह मेरे अनुग्रह की योग्यता प्राप्त कर लेता है ॥६२॥

इस षडक्षर मन्त्र का रहस्य परम गोपनीय है। यह मनुष्य के सभी कर्मों का नाश कर देने वाला है। जो व्यक्ति शिवाचार का विरोधी है, उसको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये ॥६३॥ जो व्यक्ति दांभिक है, छल-कपट करने वाला है, कृतघ्न है, जिसका चित्त सभी विषयों के उपभोग में लगा हुआ है, जो चंचल है, दुष्ट है, व्रतभ्रष्ट है, अर्थात् एक बार शिवव्रत को ग्रहण कर उसको छोड़ चुका है, जो दुःखी है, ऐसे व्यक्तियों को और दूसरे देवताओं की उपासना करने वालों को भी इस मन्त्र का उपदेश नहीं करना चाहिये ॥६४॥ हे परमेश्वरि! जो व्यक्ति अज्ञानवश, अथवा लोभ और मोहवश इस मन्त्र का उपदेश करता है, तो उससे दोनों का, अर्थात् मन्त्र देने वाले और लेने वाले का भी पतन हो जाता है ॥६५॥ जिसकी मेरे प्रति भक्ति है, जो मुक्तिरूपी कान्ता का अभिलाषी है, दृढता से व्रत का पालन करने वाला है, शिष्ट विनयशील है, जिसकी इष्टलिंग में दृढ निष्ठा है, ऐसे व्यक्ति को इस षडक्षर मन्त्र का उपदेश करना चाहिये ॥६६॥ हे शाङ्करि!

विद्याहङ्कारमुक्ताय सदाचाररताय च।
आस्तिकाय विशेषेण भक्तियुक्ताय शाङ्करि॥६७॥
इदं रहस्यं पापघ्नमात्मज्ञानप्रकाशकम्।
सारात्सारतरं दध्नो नवनीतमिवोद्धृतम्।
षडक्षरमनुज्ञानं सर्वज्ञानोत्तमोत्तमम्॥६८॥
इमं मन्त्रं गुरोर्लब्धा शिष्यस्तद्गतमानसः।
तदुक्तेनैव मार्गेण जपेन्नित्यमतन्द्रितः॥६९॥

इति सूक्ष्मागमे क्रियापादे षडक्षरमन्त्ररहस्यकथनं
नाम चतुर्थः पटलः॥४॥

जो व्यक्ति विद्या के अहंकार से मुक्त है, सदाचार का सदा पालन करता रहता है, जो आस्तिक है और विशेष रूप से जो शिवभक्ति सम्पन्न है॥६७॥ ऐसे व्यक्ति को सभी पापों का नाश करने वाले, आत्मज्ञान के प्रकाशक, सभी ज्ञानों में सर्वोत्तम इस षडक्षर मन्त्र के रहस्य का उपदेश करना चाहिये। दही के मथने से जैसे नवनीत (मक्खन) निकलता है, वैसे ही सभी शास्त्रों के सार का भी सार यह मन्त्र है॥६८॥ इस मन्त्र का उपदेश गुरु से प्राप्त कर शिष्य को चाहिये कि वह उस मन्त्र में ही अपने मन को स्थिर कर गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से सभी प्रकार के आलस्य को छोड़ कर नित्य इस षडक्षर मन्त्र का जप करे॥६९॥

इस प्रकार सूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह षडक्षर मन्त्र के रहस्य का
कथन करने वाला चौथा पटल समाप्त हुआ॥४॥



पञ्चमः पटलः

देव्युवाच

भगवन् सर्वलोकेश सर्वज्ञ परमेश्वर।
गुरोर्लब्ध्वा जपेन्मन्त्रमित्युक्तं भवताऽनघ॥१॥
गुरुस्तु कीदृशः प्रोक्तः किं वा शिष्यस्य लक्षणम्।
उपदेशः कथं ज्ञेयः सर्वमेतद् वद प्रभो॥२॥

शिव उवाच

सम्यगुक्तमिदं देवि निदानमखिलाध्वनाम्।
वक्ष्याम्येतद् विशेषेण शृणुष्व सुसमाहिता॥३॥

गुरुलक्षणम्

सत्कलां प्रजपन् शान्तः सत्यवागनहङ्कृतिः।
निर्मत्सरो निरुत्सेकः कामादिगुणवर्जितः॥४॥

देवी का प्रश्न—

हे निष्पाप, सभी लोकों के स्वामी, सर्वज्ञ, परमेश्वर भगवन्! आपने अभी कहा है कि गुरु से विधिपूर्वक मन्त्र प्राप्त कर उसका जप करे॥१॥ हे प्रभो! वह गुरु कैसा होना चाहिये? शिष्य कैसा होना चाहिये, अर्थात् गुरु और शिष्य के लक्षण क्या हैं? और सद्गुरु से सच्छिष्य कैसे उपदेश प्राप्त करे? ये सभी बातें आप मुझे बताइये॥२॥

शिव का उत्तर—

हे देवि! आपने यह ठीक कहा है, अर्थात् उचित प्रश्न किया है। सद्गुरु से प्राप्त उपदेश ही समस्त शास्त्रों का मूल कारण है। मैं इस विषय को विशेष रूप से समझा रहा हूँ। तुम उसे सावधानी के साथ एकाग्र चित्त होकर सुनो॥३॥

गुरु वह व्यक्ति कहलाता है, जो [१]सत्कला का जाप करता है। शान्त स्वभाव का, सत्यवादी, निरहंकारी, मत्सर (डाह) से रहित, व्यर्थ की अनावश्यक उत्कण्ठा से रहित और काम आदि दोषों से रहित है॥४॥ जो स्त्री के संग का त्याग करता है,

---

१. सत्कला शब्द से हम यहाँ पंचाक्षर अथवा षडक्षर मन्त्र का ग्रहण करेंगे, क्योंकि परम शिव का निष्कल और सकल स्वरूप इसमें अभिव्यक्त होता है।

स्त्रीसङ्गरहितो दान्तः समस्तागमपारगः।
वाग्मी गभीरः सन्तुष्टः प्रगल्भः करुणास्पदः ॥५ ॥
अधीतवेदवेदाङ्गः सर्वस्मृतिषु कोविदः।
पुराणसंहितावक्ता तदर्थप्रतिपादकः ॥६ ॥
मन्त्रशास्त्रकृताभ्यासो मन्त्रोद्धारविधानवित्।
शिवभक्तः शिवध्यानी गुरुभक्तो गुरुप्रियः ॥७ ॥
शिवैकाहितचित्तश्च शिवलिङ्गार्चनापरः।
सम्प्रदायविशेषज्ञः शिवभक्तजनप्रियः ॥८ ॥
सदाचारैकनिरतः सर्वत्र समदर्शनः।
एवमादिगुणोपेतो गुरुरित्यभिधीयते ॥९ ॥

गुरुप्रभावः

गुरुरेव महादेवः साक्षात् सर्वजगत्प्रभुः।
अन्यथा तं न जानीयात् परतत्त्वावबोधकम् ॥१०॥
अहमेव गुरुर्भूत्वा दीक्षाशिक्षाविधानतः।
भक्तान् मदेकशरणांस्तारयामि भवाम्बुधेः ॥११॥

इन्द्रियों को वश में रखने वाला, समस्त आगमों का ज्ञाता, वाग्मी, गंभीर स्वभाव का, सब स्थितियों में सन्तुष्ट रहने वाला, प्रगल्भ और करुणा से भरा है॥५॥ जिसने चारों वेदों और छः वेदांगों[२] का अध्ययन किया है, सभी स्मृतियों (धर्मशास्त्र) का विशेषज्ञ है, पुराण और संहिताओं का प्रवचन करने वाला और उनके अर्थ को समझाने वाला है॥६॥ जिसने मन्त्रशास्त्र का अभ्यास किया है, मन्त्रोद्धार की विधि का जो जानकार है, शिव का भक्त है, शिव के ध्यान में निरत है, इसी तरह से जो गुरु का भक्त है, गुरु का प्रिय है॥७॥ एक मात्र शिव में ही जिसका चित्त लगा हुआ है, जो शिवलिंग की पूजा में लगा रहता है, संप्रदाय की सभी विशेषताओं का जानकार है, शिवभक्त मनुष्यों को जो प्रिय है॥८॥ जो एकमात्र सदाचार के पालन में लगा रहता है, सर्वत्र समान दृष्टि रखता है। इसी तरह के गुणों से विशिष्ट व्यक्ति गुरु कहलाता है॥९॥

यह गुरु ही महादेव है। यही साक्षात् सारे जगत् का स्वामी है। पर तत्त्व का ज्ञान कराने वाले उस गुरु को अन्यथा न समझे, अर्थात् केवल मनुष्य न समझ कर साक्षात् भगवान् ही माने॥१०॥ मैं स्वयं ही गुरु बन कर मनुष्यों को विधिपूर्वक दीक्षा और शिक्षा देता हूँ और उस तरह से एक मात्र मेरी शरण में आये भक्तों का उस भवसागर से उद्धार करता हूँ॥११॥ हे महेश्वरि! मैं स्वयं ही गुरु का

---

२. तीसरे पटल की १४वीं टिप्पणी देखिये।

गुरुरूपं समाश्रित्य सोऽहमेव महेश्वरि।
गृह्णामि तत्कृतां पूजां यतस्ते मामुपाश्रिताः॥१२॥
तस्माद् द्रोहो न कर्तव्यो गुरुमूर्तेर्ममापि च।
मत्प्रसादमना देवि गुरुमेव समाश्रयेत्॥१३॥
सर्वतत्त्वैकनिलयं सर्वाधारमनूपमम्।
षड्भावरहितं दिव्यमुक्तं श्रीगुरुलक्षणम्॥१४॥
निरालम्बं निराधारं निर्विकल्पं निरामयम्।
निर्द्वन्द्वं नित्यसंसिद्धमुक्तं श्रीगुरुलक्षणम्॥१५॥
निदानं सर्वविद्यानां सर्वभूतनियामकम्।
परात् परतरं सूक्ष्ममुक्तं श्रीगुरुलक्षणम्।
तस्मात् तत्पादयुगलमाश्रित्यास्ति जगत्त्रयम्॥१६॥

गुरुशरीरे तीर्थादीनां स्थितिः

पादाङ्गुष्ठे समस्तानि तीर्थानि निवसन्ति हि।
गुल्फे तस्य महादेवि तिष्ठन्ति गणतारकाः॥१७॥

स्वरूप धारण कर भक्तों के द्वारा की गई पूजा को स्वीकार करता हूँ, क्योंकि वे भक्तगण एकमात्र मेरी ही शरण में आये हुए हैं॥१२॥ हे देवि! उस स्थिति में गुरुमूर्ति के तथा मेरे साथ भी द्रोह कभी नहीं करना चाहिये, अपितु मेरी प्रसन्नता को पाने में लगा हुआ व्यक्ति एकमात्र गुरु का ही सहारा ले॥१३॥ सभी तत्त्वों का एकमात्र आश्रय, सभी का आधार, अनुपम, [३]छः भावविकारों से रहित दिव्य स्वरूप ही श्री गुरु का लक्षण शास्त्रों में बताया गया है॥१४॥ बिना किसी सहारे के रहने वाला, निराधार, निर्विकल्प सभी व्याधियों से रहित, सभी द्वन्द्वों से मुक्त, नित्य सिद्ध स्वरूप ही गुरु का लक्षण है॥१५॥ सभी विद्याओं को सिखाने वाला, सभी प्राणियों का नियामक, पर से भी परतर एवं सूक्ष्म– यही श्री गुरु का लक्षण कहा गया है। इसलिये ये तीनों लोक उसके चरणयुगल का संहारा लेकर ही टिके हुए हैं॥१६॥

हे महादेवि! गुरु के चरणों के अंगूठों में समस्त तीर्थ निवास करते हैं। उसके टखनों में सभी गणदेवता और तारामण्डल का निवास है॥१७॥ चरणों के नीचे सारे समुद्र और चरणों के ऊपर सभी कुलपर्वत निवास करते हैं। इसके घुटनों में छत्तीस

---

३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य की गणना छः भावविकारों में होती है। निरुक्त (१।१।३) में जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति नामक छः भावविकार वर्णित हैं।

पादाधश्चाब्धयः सर्वे पादोर्ध्वे कुलपर्वताः।
षट्त्रिंशत्तत्त्वनिचयो वसत्येतस्य जानुनोः॥१८॥
एवं सर्वाश्रयीभूतं सर्वकारणकारणम्।
गुरुरूपमिदं ध्येयं सर्वतत्त्वोपरि स्थितम्॥१९॥

पाशबद्धः पशुर्गुरुं समाश्रयेत्

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं पशवः परिकीर्तिताः।
शिवः पतिरिति प्रोक्तः पाशः कर्ममलादिकम्॥२०॥
अतः पशुरसौ सर्वः पाशमुक्तः पतेर्बलात्।
समाश्रयेद् गुरुवरं ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥२१॥
सङ्गिरत्यखिलं तत्त्वं शिष्याय परमार्थतः।
अतो गुरुरिति प्रोक्तो गुरुत्वादपि पार्वति॥२२॥
सूर्योदये तमो यद्वद् विनाशमुपयाति हि।
गुरुदर्शनतस्तद्वत् पापजालं प्रणश्यति॥२३॥
संसारदावदहनज्वाला येन विनाशिता।
कटाक्षामृतवर्षेण को हि तत्सदृशो भवेत्॥२४॥

तत्त्वों का समूह विराजमान है॥१८॥ इस तरह से यह गुरु सबका आश्रयस्थान है, सभी कारणों का कारण है। सभी तत्त्वों के ऊपर स्थित इस गुरु के स्वरूप का सदा ध्यान करना चाहिये॥१९॥

ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र तृण पर्यन्त सारे जीवसमूह पशु कहलाते हैं। शिव इनका पति है और कर्म, मल आदि को [४]पाश कहा जाता है॥२०॥ इस स्थिति में ये सारे पशु, अर्थात् जीव-जगत् पति भगवान् शिव के बल से, अर्थात् अनुग्रह से जब पाशों से मुक्त हो पाते हैं, तब वे गुरु की शरण में जाते हैं और मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं॥२१॥ हे पार्वति! शिष्य को परमार्थ रूप में समस्त तत्त्वों का अच्छी तरह से उपदेश देने के कारण यह गुरु कहलाता है। सबसे गौरव पाने के कारण भी इसको गुरु कहा जाता है॥२२॥ सूर्य के उदय होने के साथ जैसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी तरह से गुरु के दर्शन से सभी पापसमूह नष्ट हो जाते हैं॥२३॥ जिस गुरु ने अपने कृपारूपी कटाक्ष की अमृत वर्षा कर शिष्य की संसाररूपी दावानल की ज्वाला को शान्त कर दिया है, उसकी बराबरी भला कौन कर सकता है॥२४॥

---

४. शैवागमों में पति, पशु और पाश नामक तीन पदार्थ प्रतिपादित हैं। इनमें पति स्वयं भगवान् शिव हैं। अज्ञानी जीव पशु और आणव, कार्म एवं मायीय नामक तीन मल पाश कहे जाते हैं।

तस्मान्मुमुक्षुः सेवेत गुरुमेवातिभक्तितः।
स एव वन्दनीयश्च सर्वदा नहि संशयः ॥२५॥
अन्धो यथाऽर्थजातं च द्रष्टुं समभिकाङ्क्षति।
गुरुं विना तथा मुक्तिं प्राप्तुमिच्छति मूढधीः ॥२६॥
सामान्यगुरुमाश्रित्य ज्ञानमिच्छति मूढधीः।
भिन्ननावाश्रितः सोऽपि महाब्धिं सन्तरिष्यति ॥२७॥
अतो हि सद्गुरुं प्राज्ञो ज्ञानार्थी संश्रयेन्नरः।
एतादृशं गुरुं ज्ञात्वा शुश्रूषां वै समाचरेत् ॥२८॥

कुटुम्बस्यैक एव गुरुः कर्तव्यः

पितृभ्रातृकलत्राणां पुत्रादीनां तथैव च।
दीक्षाशिक्षाविधानार्थमेक एव गुरुर्भवेत् ॥२९॥
गुरवो यत्र बहवो भवन्त्यन्योन्यभेदतः।
वीरशैवसदाचारस्तत्र नास्तीति निश्चयः ॥३०॥

इसलिये मोक्ष की कामना वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह अत्यन्त भक्तिभाव से सदा गुरु की ही सेवा करे, उसी की वन्दना करे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ऐसा करने से उसे अवश्य मुक्ति मिलेगी ॥२५॥ अन्धे व्यक्ति की जैसे किसी वस्तु को देखने की इच्छा व्यर्थ जाती है, उसी तरह से जो मूढ बुद्धि बिना गुरु की सहायता के मुक्ति चाहता है, तो उसके भी सारे प्रयत्न व्यर्थ जाते हैं ॥२६॥ सामान्य गुरु का सहारा लेकर जो मूढ बुद्धि वाला व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसका यह प्रयत्न उसी तरह का है, जैसे कि कोई व्यक्ति टूटी नाव के सहारे समुद्र पार करना चाहता हो ॥२७॥ इसलिये ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा वाला बुद्धिमान् मनुष्य सद्गुरु की शरण में जाय। ऐसे गुरु को जान कर वह उसकी सेवा करे ॥२८॥

पिता, भ्राता, स्त्री, पुत्र आदि सबकी, अर्थात् पूरे परिवार की दीक्षा और शिक्षा के विधान के लिये एक ही गुरु होना चाहिये, अर्थात् एक परिवार के लिये एक ही गुरु होना चाहिये, पूरे परिवार को एक ही गुरु से दीक्षा, शिक्षा आदि लेनी चाहिये ॥२९॥ जहाँ, अर्थात् जिस एक परिवार में बहुत से गुरु होते हैं, उस परिवार में उन गुरुओं के आपस में एक दूसरे के विचारों की भिन्नता के कारण वीरशैव सदाचार[५] का बाध हो जाता है, ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥३०॥

---

५. एक ही परिवार में अलग-अलग व्यक्तियों के अलग-अलग गुरु होने पर गुरुओं की अनेकता के कारण उस परिवार में वीरशैव धर्म में उपदिष्ट सदाचार नहीं रह पाता। अतः सदाचार की रक्षा के लिये एक परिवार में एक ही गुरु से दीक्षा और शिक्षा ग्रहण करने का यहाँ विधान है।

शिष्यस्वरूपम्

अथ शिष्यस्वरूपं च वक्ष्ये संक्षेपतः शृणु।
शुचिः सुशीलो धर्मिष्ठः सत्यवाग् विजितेन्द्रियः।
अहङ्कारविनिर्मुक्तो रागद्वेषादिवर्जितः॥३१॥
गुरुभक्तो जितक्रोधो गुर्वाज्ञापरिपालकः।
विषयासङ्गनिर्मुक्तो विनिर्जितमदाष्टकः॥३२॥
का वा गतिर्ममेत्येवं ध्यायमानो दिवानिशम्।
एवं गुणान्वितं शिष्यं परीक्ष्य गुरुरादरात्।
शिक्षयेत् तस्य वै चित्तं यथा भवति निर्मलम्॥३३॥

शिष्याय शिवाचारोपदेशः

ततः प्रसन्नमनसं शिष्यमालोक्य देशिकः।
समादिशेच्छिवाचारं भूतिधारणपूर्वकम्॥३४॥
दत्त्वा विभूतिं भक्तेभ्यो गन्धपुष्पाक्षतैः सह।
ताम्बूलानि च वस्त्राणि यथायोग्यं प्रदापयेत्॥३५॥

अब मैं संक्षेप में शिष्य के स्वरूप का वर्णन करूँगा। उसे तुम सावधानी से सुनो। शिष्य को शरीर और मन से पवित्र, सुशील, धर्मिष्ठ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, अहंकार रहित और राग-द्वेष से शून्य होना चाहिये॥३१॥ शिष्य को गुरु का भक्त, क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला, गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला, विषयासक्ति से मुक्त और [६]आठ प्रकार के मद से रहित होना चाहिये॥३२॥ उसे इस बात की रात-दिन चिन्ता रहनी चाहिये कि मेरी क्या गति होने वाली है? इन लक्षणों (गुणों) के आधार पर शिष्य की परीक्षा कर लेने के उपरान्त गुरु को उस शिष्य को शुद्ध मन से ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि उसका चित्त निर्मल हो जाय॥३३॥

चित्त के निर्मल हो जाने के उपरान्त दीक्षा व शिक्षा देने वाला वह देशिक आचार्य प्रसन्न मन वाले उस शिष्य को देख कर, स्वयं अपने हाथ से शिष्य के ललाट पर भस्म लगा कर उसे समस्त शिवाचारों का उपदेश करे॥३४॥ इसके बाद वहाँ उपस्थित अन्य भक्तजनों को भी गन्ध, पुष्प, अक्षत के साथ विभूति प्रदान करनी चाहिये। उनका ताम्बूल, वस्त्र आदि प्रदान कर यथोचित सत्कार करना चाहिये॥३५॥ इतना कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद वह श्रेष्ठ गुरु शिष्य के ललाट आदि स्थानों

---

६. आठ प्रकार के मद ये हैं— कुल, शील, धन, रूप, यौवन, विद्या, तप और राजमद।

ततः शिष्यस्य फालादिस्थानेषु च यथाक्रमम्।
विभूतिधारणं कुर्यात् स्वयमेव गुरूत्तमः ॥३६॥
रुद्राक्षान् धारयित्वाऽथ शिवज्ञानैकसाधकान्।
शास्त्रोक्तविधिना देवि शिरोग्रीवाकरादिषु ॥३७॥
निषिञ्चेत् पञ्चकलशपूरितैस्तीर्थवारिभिः ।
तथाऽभिमन्त्रितैः शैवैर्मन्त्रैः पञ्चाक्षरेण च ॥३८॥
गुरुः पूर्वमुखो भूत्वा शिष्यं प्रत्यङ् मुखस्थितम्।
कृपादृष्ट्या समालोक्य ततो न्यासं समाचरेत् ॥३९॥
प्रथमं मातृकान्यासमध्वन्यासमतः परम्।
कलान्यासं ततः कुर्यान्मन्त्रन्यासमतः परम् ॥४०॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत्।
उपादिशेन्महामन्त्रं तथा शैवं षडक्षरम् ॥४१॥

पर शास्त्रोपदिष्ट क्रम से स्वयं ही विभूति[७] लगावे ॥३६॥ हे देवि! विभूति लगा देने के उपरान्त गुरु उस शिष्य के सिर, ग्रीवा, हाथ आदि स्थानों में शिवज्ञान की प्राप्ति के एकमात्र साधन [८]रुद्राक्षों को शास्त्रोक्त विधि से धारण करावे ॥३७॥ इसके बाद पांच कलशों में भरे गये तीर्थों से लाये गये जल को पंचाक्षर मन्त्र तथा अन्य शैव मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उससे उस शिष्य का अभिषेक करना चाहिये ॥३८॥ गुरु पूर्व दिशा में मुख कर और शिष्य को पश्चिम मुख बैठा कर उस शिष्य को कृपापूर्ण दृष्टि से देखे और तब शिष्य के शरीर पर मन्त्र का न्यास करे ॥३९॥ पहले [९]मातृकान्यास, तब [१०]षडध्वन्यास, तब [११]कलान्यास और अन्त में [१२]मन्त्रन्यास करे ॥४०॥ इसी तरह से न्यासविधि को पूरा कर तब प्राणायाम करे। प्राणायाम स्वयं करने और शिष्य को भी कराने के उपरान्त शिव के षडक्षर महामन्त्र का उपदेश करे ॥४१॥

---

७. चन्द्रज्ञानागम के क्रियापाद के २-८ पटलों में अष्टावरणों का विस्तार से परिचय दिया गया है। वहीं छठे पटल में विभूति धारण की विस्तृत विधि प्रदर्शित है। इसके लिये ''अष्टावरण विज्ञान'' नामक ग्रन्थ भी देखा जा सकता है।

८. अष्टावरणों में रुद्राक्ष भी परिगणित है। उक्त दोनों ग्रन्थों से इस विषय की भी विस्तृत जानकारी मिल सकती है।

९. मातृकान्यास की पद्धति के लिये चन्द्रज्ञानागम के ११वें पटल की १५वीं टिप्पणी देखिये।

१०. प्रथम पटल की पांचवीं टिप्पणी देखिये।

११. कलाध्वन्यास और अष्टात्रिंशत्कलान्यास के लिये दशकर्मपद्धति का वीरशैवदीक्षाविधि प्रकरण (पृ० ८३-८४) देखिये।

१२. मूल मन्त्र द्वारा करन्यास, अंगन्यास और षडंगन्यास की विधि ऊपर तीसरे पटल की ५-७ संख्या की टिप्पणियों में दी गई है।

इष्टलिङ्गसंस्कारः

एवं मन्त्रमुपादिश्य शिष्याङ्गमपि देशिकः।
शिवाङ्गमिति संचिन्त्य लिङ्गसंस्कारमाचरेत्॥४२॥
लिङ्गं हस्ते गृहीत्वा तु भावदृष्ट्या च देशिकः।
संस्थाप्य लिङ्गे शिष्यस्य मस्तकस्थां कलां पराम्॥४३॥
लिङ्गे प्राणं विनिक्षिप्य प्राणे लिङ्गं च शाम्भवम्।
तल्लिङ्गं स्थापयेच्छिष्ये सम्यग् ध्यात्त्वैकभावतः॥४४॥
ध्यात्रे शिष्याय तल्लिङ्गं धारयित्वा निरूपयेत्।
वीरमाहेश्वराचारनिष्ठां परमदुर्लभाम्॥४५॥

वीरमाहेश्वराचारः

दत्तं [१३]लिङ्गमिदं वत्स न कदाचिद् वियोजय।
प्राणवद् रक्षणीयं हि प्राणलिङ्गमिदं तव॥४६॥
उत्तमाङ्गे[१४] गले कक्षे तथा वक्षःस्थलेऽपि वा।
करस्थलेऽपि वा नित्यं सावधानेन धारय॥४७॥

इसी तरह से मन्त्र का उपदेश कर देने के उपरान्त देशिक (दीक्षागुरु) शिष्य के अंग में भी शिव के अंग की भावना कर लिंग का संस्कार करे॥४२॥ वह देशिक (दीक्षा देने वाला गुरु) लिंग को हाथ में लेकर उसे भावपूर्ण दृष्टि से देखे और तब उस शिष्य के इष्टलिंग में मस्तक में स्थित परमा कला को स्थापित करे॥४३॥ इष्टलिंग में प्राण का निक्षेप कर उस प्राण में शांभव लिंग की स्थापना करे। इसके बाद एकाग्र चित्त से शांभव लिंग का ध्यान कर उस लिंग को शिष्य में प्रतिष्ठित कर दे॥४४॥ शिवलिंग के ध्यान में निमग्न शिष्य को उस इष्टलिंग को धारण कराकर परम दुर्लभ वीर माहेश्वरों के [१५]आचार के पालन की दृढनिष्ठा का निरूपण करे॥४५॥

हे वत्स! यह मैंने तुम्हें जो इष्टलिंग दिया है, उसको अपने शरीर से कभी अलग मत करना। यह प्राणलिंग तुम्हारे लिये प्राण के समान रक्षणीय है॥४६॥ इस प्रदत्त इष्टलिंग को तुम अपने शिर पर, गले में, बगल में, वक्षःस्थल पर अथवा हाथ में सदा सावधानी से धारण करो॥४७॥ प्रमादवश असावधानी से इस लिंग

---

१३. सिद्धान्तशिखामणि (६।२६) में भी इस प्रकार का श्लोक विद्यमान है।
१४. सिद्धान्तशिखामणि (६।५२) से तुलना कीजिये।
१५. वीरशैव माहेश्वरों के द्वारा पालनीय पांच प्रकार के आचारों का विस्तृत परिचय चन्द्रज्ञानागम के नवम पटल में दिया गया है। संक्षेप में यहाँ भी उनका उल्लेख है।

प्रमादात्[१६] पतिते लिङ्गे भिन्ने चोरादिभिर्हृते।
पीठादुत्क्रमिते वापि तूर्णं प्राणं परित्यज॥४८॥
मया नियमिताचारे प्रसादे पादवारिणि।
जङ्गमे निजलिङ्गैक्ये वर्ततामप्रमादतः॥४९॥
वीरशैवव्रते लुप्ते येन केनापि हेतुना।
प्रायश्चित्तं तदा वत्स प्राणत्यागो विधीयते॥५०॥
एवं वदेद् वीरशैवनिष्ठां शिष्याय देशिकः।
तदाप्रभृति शिष्यस्तु तदुक्तं चैव साधयेत्॥५१॥

वीरशैवनिष्ठा

न[१७] लङ्घयेद् गुरोराज्ञां तत्पादार्पितमानसः।
शरीरमर्थं प्राणं च देवि तस्मै निवेदयेत्॥५२॥

के कहीं गिर जाने पर, टूट जाने पर, चोर आदि के द्वारा चुरा लिये जाने पर अथवा पीठ से अलग हो जाने पर तुम तुरन्त प्राणत्याग कर दो॥४८॥ मेरे द्वारा अवश्य आचरणीय उपदिष्ट आचारों में, प्रसाद (नैवेद्य) में, चरणोदक में, निजलिंग के साथ एकता की स्थिति को प्राप्त जंगम में सदा प्रमादरहित बनो॥४९॥ हे वत्स! जिस किसी भी कारण से वीरशैव व्रत का लोप होने पर प्रायश्चित्त के रूप में केवल प्राणत्याग का ही विधान यहाँ बताया गया है॥५०॥ देशिक इस प्रकार से वीरशैव की [१८]निष्ठा (दृढ भक्ति) के विषय में शिष्य को उपदेश दे और तभी से शिष्य भी गुरु के द्वारा उपदिष्ट नियमों का तत्परता से पालन करे॥५१॥

हे देवि! गुरु के चरणकमलों में अपने मन को भी समर्पित कर देने वाला शिष्य गुरु की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करे। शरीर, धन और प्राण – सब कुछ उसे समर्पित कर दे॥५२॥ जो व्यक्ति शिवलिंग (इष्टलिंग) को धारण किये हुए हैं, भस्म

---

१६. सिद्धान्तशिखामणि (६।२७) से तुलनीय।

१७. सिद्धान्तशिखामणि (९।५७) से तुलनीय।

१८. पाशुपत मत के ग्रन्थ गणकारिका में व्यक्त, अव्यक्त आदि जीव की अवस्थाओं में निष्ठा पाँचवीं अवस्था है। इसको निरंजन पशु की अन्तिम अवस्था माना गया है। यह एक प्रकार की सिद्धावस्था है। सिद्धावस्थापन्न जीव की दृढ निष्ठा के समान भगवान् के प्रति दृढ भक्ति रखना ही इसका अभिप्राय है।

मल्लिङ्गधारिणो ये च भूतिरुद्राक्षसंयुताः।
ये वै मदेकशरणास्तान् दृष्ट्वा प्रणमेन्मुदा॥५३॥
उपचर्य च तान् भक्तो यथाशक्ति समर्चयेत्।
तोषयेत् सततं भक्त्या भोजनाच्छादनादिभिः॥५४॥
वीरशैवः क्रमेणैवमाचरेद् गुरुशासनम्।
प्राप्नोति सुखमारोग्यमिहामुत्र सुदुर्लभम्॥५५॥
अनेकजन्मसम्प्राप्तं कर्म चागामि सञ्चितम्।
प्रारब्धमपि चैतस्य तत्क्षणादेव नश्यति॥५६॥
ब्रह्मराक्षसवेतालकूष्माण्डाद्याः सुदारुणाः।
वीरमाहेश्वरं दृष्ट्वा पलायन्ते भयातुराः॥५७॥

और रुद्राक्ष से सुशोभित हैं, जो मात्र मेरी ही शरण में आये हुए हैं, उनको देखकर प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करे॥५३॥ मेरा भक्त उन सबकी यथाशक्ति सेवा करे, पूजा करे और उनको भोजन, वस्त्र आदि प्रदान पर सदा सन्तुष्ट रखे॥५४॥ जो वीरशैव गुरु की आज्ञा का, गुरु के द्वारा उपदिष्ट नियमों का क्रमपूर्वक पालन करता है, वह इस लोक और परलोक में भी परम दुर्लभ सुख और आरोग्य को प्राप्त करता है॥५५॥ इस शिवभक्त वीरशैव के अनेक जन्मों से चले आ रहे संचित कर्मों के साथ भविष्य में सम्पन्न होने वाले और वर्तमान में विद्यमान [१९]प्रारब्ध – ये सभी कर्म तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं॥५६॥ इस वीर माहेश्वर को देखकर ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्माण्ड[२०]आदि भयानक प्राणी डर के मारे भाग खड़े होते हैं॥५७॥ हे देवि!

---

१९. कर्मों के विषय में पुराणों का मत है कि बिना भोग के कर्म का क्षय कभी नहीं होता। दूसरा मत गीता का है कि ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है। इस पर टीकाकारों का कहना है कि प्रारब्ध कर्म का क्षय तो भोग से ही होता है। यहाँ तीसरा पक्ष प्रस्तुत किया गया है कि शिवभक्त के प्रारब्ध कर्म का भी क्षय हो जाता है। मार्कण्डेय, श्वेतमुनि जैसे शिवभक्तों को यहाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जो कि मृत्यु के मुख से भी शिवप्रसाद से मुक्त हो गये।

२०. पौराणिक कोश (पृ० १२४) में कूष्माण्ड शब्द का विवरण इस प्रकार दिया गया है— वाराणसी के रक्षक नन्दी, महाकाल, चण्डघण्ट, चण्डेश्वर आदि अनेक शिवगणों में एक शिवगण। ये नाना प्रकार की आकृति वाले, महोदर, महाकाय तथा वज्रशक्ति धारण करने वाले कहे गये हैं। एक विनायक (मत्स्य पुराण १८३।६३)। शिव के गण, एक प्रकार के पिशाच (शिव पु०) एक प्रकार के दुष्ट भूत, प्रेत आदि। ये बच्चों को कष्ट देते हैं (भाग० ६।८।२४; १०।६।२७; ब्रह्माण्ड० ३।७।३८४, ४१।२०) इन्द्र की सहायता से विविध रूप धारण कर इन सबने ध्रुव की तपस्या में विघ्न डाला था (विष्णु० १।१२।१३)।

यस्तु लब्ध्वा गुरोर्मन्त्रं जपेल्लिङ्गं च पूजयेत्।
वीरशैवपरो देवि स धन्यः पुरुषो भुवि॥५८॥
एवमुक्तं समासेन लक्षणं गुरुशिष्ययोः।
उपदेशविधानं च ततः किं प्रष्टुमिच्छसि॥५९॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे गुरुशिष्यस्वरूपनिरूपणं
नाम पञ्चमः पटलः॥५॥

इस पृथ्वी पर वह पुरुष धन्य है, जो गुरु से मन्त्र ग्रहण कर उसका जप करता है, इष्टलिंग की पूजा करता है और वीरशैवों की सेवा-पूजा करता है॥५८॥ इस तरह से संक्षेप में यहाँ गुरु और शिष्य का लक्षण बताकर गुरु द्वारा प्रदत्त उपदेश का विधान भी बता दिया गया है। अब आगे तुम क्या पूँछना चाहती हो॥५९॥

इस प्रकार श्री सूक्ष्मागम के क्रियापाद का गुरु और शिष्य के लक्षण का निरूपण
करने वाला यह पाँचवाँ पटल समाप्त हुआ॥५॥



षष्ठः पटलः

देव्युवाच

गुरुशिष्यस्वरूपं तु श्रुतं देव दयानिधे।
लिङ्गं तु कीदृशं देव तस्य पूजा कथं भवेत्॥
फलं वा किमिति प्रोक्तं तत्सर्वं ब्रूहि मे प्रभो॥१॥

शिव उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञे यत्त्वया परिचोदितम्।
तत्सर्वं हि समासेन वक्ष्यामि शृणु पार्वति॥२॥

लिङ्गलक्षणम्

नादरूपः शिवः साक्षाल्लिङ्गमित्यभिधीयते।
तत्पीठिका महाशक्तिः सा च वै बिन्दुरूपिणी।
तयोः सम्मेलनाद् देवि कला तत्र प्रतिष्ठिता॥३॥
सा कला परमा सूक्ष्मा व्याप्ता सर्वत्र सर्वदा।
तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं नादबिन्दुकलात्मकम्॥४॥

देवी का प्रश्न—

हे दयानिधि देव शंकर! मैंने आपसे गुरु और शिष्य के स्वरूप (लक्षण) को सुना। हे देव! अब मैं लिंग का स्वरूप कैसा है, उसकी पूजा कैसे की जाती है और उसकी पूजा से क्या फल मिलता है? यह सब सुनना चाहती हूँ। हे प्रभो! आप यह सब मुझे बताइये॥१॥

शिव का उत्तर—

हे महान् प्रज्ञा (बुद्धि) सम्पन्न देवी पार्वति! तुम धन्य हो, धन्य हो। यह जो तुमने प्रश्न किये हैं, उन सबका मैं संक्षेप में उत्तर दे रहा हूँ। तुम उसे सावधानी से सुनो॥२॥

हे देवि! नादस्वरूप साक्षात् शिव ही लिंग शब्द से कहे जाते हैं और इसी तरह से बिन्दुरूपिणी महाशक्ति ही उनकी पीठिका कही गई है। नाद और बिन्दु, लिंग और पीठिका के मिलन से उनमें कला की प्रतिष्ठा होती है॥३॥ यह कला परम सूक्ष्म है और सदा सर्वत्र व्याप्त रहती है। इन सबको मिलाने से लिंग का नाद, बिन्दु और कला से समन्वित स्वरूप बनता है॥४॥ लिंग पद में स्थित लिकार लय का, बिन्दु

लिकारो लयबुद्धिस्थो बिन्दुना स्थितिरुच्यते।
गकारात् सृष्टिरित्युक्ता लिङ्गं सृष्ट्यादिकारणम्॥५॥
लीनं प्रपञ्चरूपं हि सर्वमेतच्चराचरम्।
सर्गादौ गम्यते यस्मात् तस्माल्लिङ्गमुदीरितम्॥६॥
लिङ्गं शैवमिदं साक्षाच्छिवशक्त्युभयात्मकम्।
ध्यातव्यमर्चनीयं च भुक्तिमुक्तिफलेच्छुना॥७॥
अतो यजेत् सदा लिङ्गं सर्वकारणकारणम्।
निरामयं निराकारं निर्गुणं निर्मलं शिवम्।
ज्योतिर्मयं निरालम्बं सर्वाधारमनूपमम्॥८॥

लिङ्गमाहात्म्यम्

तस्यैव तेजसा देवि चन्द्रादिग्रहतारकाः।
प्रकाशन्ते नियमिताः कालक्लृप्त्या दिवानिशम्॥९॥
अस्य भीत्या महान् वायुः सदा वाति जगत्त्रये।
सूर्यश्चोदेति नियतो वह्निरुष्णकरः सदा।
चन्द्रश्च शीततां याति यमश्च परिधावति॥१०॥

स्थिति का और गकार सृष्टि का उद्भावक है, अतः यह लिंग सृष्टि, स्थिति और संहार का कारण स्वरूप है॥५॥ यह सारा चराचरात्मक प्रपंचस्वरूप संसार लयावस्था में उसीमें लीन रहता है। सर्ग (सृष्टि) का आरंभ होने पर यह उस लिंग से ही निकलता है। उस तरह से संसार की लयावस्था और सृष्टिदशा का परिचायक होने से यह लिंग कहलाता है॥६॥ यह शैव लिंग साक्षात् शिव और शक्ति इन दोनों का समरस स्वरूप है। भुक्ति और मुक्ति को चाहने वालों को शिवलिंग के उस उभयात्मक स्वरूप का ही ध्यान करना चाहिये और उसी की पूजा करनी चाहिये॥७॥ भोग और मोक्ष की आकांक्षा वाले व्यक्ति को सभी कारणों के भी कारण, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, निर्मल, कल्याणमय, ज्योतिर्मय, स्वयं निरालम्ब होते हुए भी सबके आधारस्वरूप उस अनुपम लिंग की पूजा करनी चाहिये॥८॥

हे देवि! उस ज्योतिर्लिंग के तेज से ही चन्द्रमा आदि ग्रहगण और तारागण भगवान् शिवस्वरूप काल के अधीन रह कर नियमित रूप से रात-दिन प्रकाशित होते रहते हैं॥९॥ इस ज्योतिर्लिंग के भय से ही तीनों भुवनों में महान् वायु सदा प्रवाहित होता रहता है, सूर्य निश्चित समय पर उगता है, अग्नि सदा उष्णता प्रदान करता रहता है, चन्द्रमा शीतलता बिखेरता है और यमराज मृत्यु के रूप में सर्वत्र दौड़ता रहता है॥१०॥ हे देवि! इसलिये यह ज्योतिर्लिंग सत्, चित् और

तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
ध्यायते यः सदा देवि स मुक्तो नात्र संशयः ॥११॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नमनन्तं विश्वतोमुखम्।
सूरयस्तत्प्रपश्यन्ति निर्मलं परमं पदम् ॥१२॥

लिङ्गशब्दस्य यौगिकार्थकथनम्

देवदानवगन्धर्वा वेदाः साङ्गाः सनातनाः।
उत्पद्यन्तेऽत्र कल्पादौ कल्पान्ते च लयं गताः ॥१३॥
दक्षिणाङ्गात् ततो ब्रह्मा विष्णुर्वामाङ्गतस्तथा।
समस्तवेदजननी गायत्री हृदयादभूत् ॥१४॥
वेदाः शिरःसमुद्भूताः साङ्गोपाङ्गाः सहस्रशः।
उत्पद्यते लीयते च लिङ्गेऽस्मिन् सचराचरम् ॥१५॥

लिङ्गस्यैव परतत्त्वत्वकथनम्

यल्लिङ्गमपरिच्छेद्यमादिमध्यान्तवर्जितम् ।
परानन्दं चिदाकारं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥१६॥

आनन्द स्वरूप परम ब्रह्म ही है। इसका जो सदा ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है॥११॥ अव्यक्त होते हुए भी जो इस जगत् के रूप में व्यक्त हो उठता है, जिसके अनन्त रूप हैं, सभी दिशाओं में जो व्याप्त है, उस निर्मल परम पद स्वरूप ज्योतिर्लिंग का निर्मल चित्तवाले विद्वद्गण ही दर्शन कर पाते हैं॥१२॥

देव, दानव, गन्धर्व, छः अंगों सहित चारों सनातन वेद – ये सब कल्प के आदि में लिंग से ही प्रादुर्भूत होते हैं और कल्पान्त में उसीमें विलीन हो जाते हैं॥१३॥ सृष्टि के प्रारंभ में इसके दक्षिण अंग से ब्रह्मा और वाम अंग से विष्णु उत्पन्न होते हैं। इसके हृदय से समस्त वेदों की जननी गायत्री प्रकट होती है॥१४॥ हजारों अंगों और उपांगों के साथ चारों वेद इसके शिर से उत्पन्न होते हैं। यह चर और अचर (स्थावर और जंगम) सारा जगत् इस लिंग से ही उत्पन्न होता है और इसी में लीन भी हो जाता है॥१५॥

यह जो लिंग है, उसी का योगी गण अपरिच्छेद्य, आदि, मध्य और अन्त से वर्जित, परमानन्द स्वरूप, चित् आकार वाले और [१]कृष्णपिंगल परम पुरुष के रूप में ध्यान करते हैं॥१६॥ इस लिंग का ही योगी गण हिरण्यमय पुरुष ईशान, पशुओं के पति, ईश्वर, ऊर्ध्वरेता, उमाकान्त और सभी विद्याओं के स्वामी के रूप में

---

१. भगवान् अर्धनारीश्वर शिव का स्वरूप कृष्णपिंगल माना गया है। माता पार्वती मकरतश्यामा (कृष्ण वर्ण) और भगवान् शिव पिंगल (कपिल) वर्ण के हैं।

हिरण्यपतिमीशानं पशूनाम्पतिमीश्वरम्।
ऊर्ध्वरेतमुमाकान्तं सर्वविद्याधिनायकम्॥१७॥
ब्रह्मादिपतिमद्वन्द्वं नीलकण्ठं सदाशिवम्।
विश्वाधिकं महादेवं जगद्व्यापकमच्युतम्॥१८॥
परात्परतरं तत्त्वमक्षरं सदसच्च तत्।
अप्रतर्क्यममेयं च व्योमकेशं दुरासदम्॥१९॥
भर्गं वरेण्यं यद्रूपं तल्लिङ्गमिति कीर्तितम्।
तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सदा ध्यायन्ति योगिनः॥२०॥
त्रैगुण्यविषयान् देवान् त्यक्त्वा लिङ्गं च निर्गुणम्।
भजन्ति परमं धाम शैवं विश्वादिकारणम्॥२१॥
सर्वमन्यत् परित्यज्य तृणवद् देवतान्तरम्।
शैवं लिङ्गं सदा ध्यायेत् सर्वसिद्धिषु संस्थितम्॥२२॥

लिङ्गार्चनविधिः

अथ वक्ष्ये महादेवि लिङ्गार्चनविधिं परम्।
आदौ ध्यात्वा महादेवं त्रियम्बकमुमापतिम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं दिव्यलिङ्गोपरि स्थितम्॥२३॥

ध्यान करते हैं॥१७॥ इस लिंग को ही योगी गण ब्रह्मा आदि का स्वामी सभी द्वन्द्वों से अतीत, नीलकण्ठ, सदाशिव, सारे विश्व से अतिरिक्त, महादेव, सारे जगत् में व्याप्त होने पर भी अपने स्वभाव से कभी च्युत न होने वाला परम तत्त्व मानते हैं॥१८॥ यह लिंग परतत्त्व से भी परे विद्यमान तत्त्व है, अक्षर स्वरूप और सदसत् उभय स्वरूप है। यह तर्क की सीमा से और सर्वविध प्रमाण से भी परे है। पाताल से लेकर दिव्य व्योम पर्यन्त यह व्याप्त है और इसको पा सकना बड़ा कठिन है॥१९॥ सविता देव का जो तेजोमय वरणीय स्वरूप है, उसी को लिंग कहा जाता है। इसीलिये योगीजन सदा इस लिंगस्वरूप पर ब्रह्म का ही ध्यान करते हैं॥२०॥ सत्त्व, रज और तम नामक तीनों गुणों से संचालित देवगणों को छोड़कर योगीगण निर्गुण लिंग का ही ध्यान करते हैं, क्योंकि यह शिवलिंग ही इस विश्व का आदि कारण है, यही परम धाम है॥२१॥ इसलिये अन्य सभी देवताओं का तृणवत् परित्याग कर के सभी सिद्धियों में विद्यमान, अर्थात् सभी सिद्धियों को देने वाले शिवलिंग का सदा ध्यान करे॥२२॥

हे महादेवि! अब मैं तुमको लिंगपूजा की श्रेष्ठ विधि को बताऊँगा। पूजा के प्रारंभ में तीन नेत्रों वाले, प्रसन्नवदन, शान्त स्वभाव, दिव्य लिंग के रूप में विराजमान उमा के पति भगवान् महादेव का ध्यान करे॥२३॥ सर्वत्र व्यापक, सबके स्वामी,

सर्वव्यापकमीशानं पवित्रं पुष्टिवर्धनम्।
अर्चयेदान्तरैः पुष्पैर्मानसैरुपचारकैः ॥२४॥
अहिंसा चेन्द्रियजयः सर्वभूतदया परा।
क्षमा ध्यानं तपो ज्ञानं सत्यं चैव तथा परम्।
एभिः पुष्पैरहिंसाद्यैर्मानसैः शिवमर्चयेत् ॥२५॥

पञ्च यज्ञाः

कर्मयज्ञस्तपोयज्ञो जपयज्ञस्तथापरः।
ध्यानयज्ञो ज्ञानयज्ञः पञ्चयज्ञा इमे स्मृताः।
एतेषामपि पञ्चानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम् ॥२६॥
कर्मयज्ञो द्विधाः ज्ञेयः सकामाकामभेदतः।
सकामे तु फलं भुक्त्वा जायते भुवि पूर्ववत्।
निष्कामेऽपि वरं ज्ञानं लब्ध्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥२७॥
हिंसादिदोषरहितो रागादिगुणवर्जितः।
तपोयज्ञो महादेवि मोक्षैकफलसाधकः ॥२८॥

सभी प्रकार के बल की वृद्धि करने वाले, पवित्र लिंग की मानस उपचार से आन्तर पुष्पों के द्वारा पूजा करे ॥२४॥ अहिंसा, इन्द्रिय जय, सभी प्राणियों पर उत्कृष्ट दया, क्षमा, ध्यान, तप, ज्ञान और सर्वोत्कृष्ट सत्य – ये सब आन्तर पुष्प हैं। इन अहिंसा आदि पुष्पों से शिव की मानस पूजा सम्पन्न करे ॥२५॥

कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ और ज्ञानयज्ञ — ये पांच प्रकार के यज्ञ [2]शास्त्रों में वर्णित हैं। इन पांच यज्ञों में उत्तरोत्तर यज्ञ श्रेष्ठ माना गया है, अर्थात् कर्मयज्ञ की अपेक्षा तपोयज्ञ, उससे जपयज्ञ, उससे ध्यानयज्ञ और ज्ञानयज्ञ इन सबमें श्रेष्ठ है ॥२६॥ इनमें कर्मयज्ञ सकाम और अकाम के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिये। सकाम कर्म का फल भोग कर प्राणी पुनः पूर्ववत् इस पृथ्वी कर पैदा होता है। इसके विपरीत निष्काम कर्म को करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पदवी का अधिकारी हो जाता है ॥२७॥ हे महादेवि! हिंसा आदि दोषों से रहित, राग आदि गुणों से वर्जित तपोयज्ञ एकमात्र मोक्षफल का साधक माना गया है ॥२८॥

---

२. मनुस्मृति (३।७०-७२) में वर्णित पंचविध यज्ञों से भिन्न पांच यज्ञों का यहाँ विधान किया गया है। सिद्धान्तशिखामणि (९।२१-२५) से तुलनीय।

अष्टैश्वर्यप्रदा पूजा योगाद्यं स्वर्गसाधनम्।
पापहारी जपः प्रोक्तो ज्ञानं ध्यानं च मोक्षदम्॥२९॥
निष्कामकर्मकर्तॄणां श्रौतस्मार्तानुसारतः।
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः।
केवलं कर्मनिष्ठानां तद्वार्ताऽपि न जायते॥३०॥
बहिर्यज्ञरतानां तु देवाः पाषाणमृण्मयाः।
अन्तर्यागवतां देवि हृदयस्थः सदाशिवः॥३१॥
ज्ञानं ध्यानं न यस्यास्ति स न वेत्ति परं शिवम्।
यद्वदर्थांस्तु जात्यन्धो नहि पश्यति पार्वति॥३२॥
तस्माद्यज्ञादिकं बाह्यं त्यक्त्वा स्वर्गादिसाधनम्।
गुरोर्लब्ध्वा परं ज्ञानं ध्यानयोगरतो भवेत्॥३३॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
ध्यानयोगस्य चैकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३४॥
शिवज्ञानामृतं पीत्वा भक्त्या परवशं गतः।
निवेशयेच्छिवे चित्तं संयतात्मा निराकुलः॥३५॥

शिवलिंग की पूजा से अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है। योग आदि स्वर्ग के साधन हैं। जप सभी पापों को दूर करने वाला है। ज्ञान और ध्यान मोक्ष को देने वाले हैं॥२९॥ श्रौत और स्मार्त पद्धति से निष्काम कर्मों का अनुष्ठान करने वाले धर्मिष्ठ व्यक्ति की अनेक जन्मों के बाद ज्ञान और ध्यान में बुद्धि लगती है। जो व्यक्ति केवल कर्मों का ही अनुष्ठान करते हैं, वहाँ तो ज्ञान और ध्यान की वार्ता भी नहीं होने पाती॥३०॥ हे देवि! जो व्यक्ति बाह्य पूजा में लगे रहते हैं, उनके देवता पाषाण और मिट्टी के बने होते हैं। इसके विपरीत आन्तर पूजा में लगे व्यक्तियों का देवता तो अपने हृदय में स्थित सदाशिव ही होता है॥३१॥ हे पार्वति! जो व्यक्ति ज्ञान और ध्यान से वर्जित है, वह परम शिव को उसी प्रकार नहीं जान पाता, जैसे कि जन्म से ही अन्धा व्यक्ति सांसारिक पदार्थों को नहीं देख पाता॥३२॥ इसलिये स्वर्ग आदि के साधन बाह्य यज्ञ आदि को छोड़ कर व्यक्ति को गुरु से श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश प्राप्त कर ध्यानयोग के अभ्यास में लग जाना चाहिये॥३३॥ हजारों अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ अकेले ध्यानयोग की सोलहवीं कला को भी नहीं छू सकते॥३४॥ शिवज्ञान रूपी अमृत का पान कर भक्तिभाव से भरा हुआ, अर्थात् भक्ति के अधीन होने से परवश हुआ व्यक्ति सभी प्रकार की व्याकुलता को छोड़कर अपने मन को वश में करके चित्त को शिव के ध्यान में लगा दे॥३५॥

वीरशैवक्रमः

पूजादौ तु शिवं ध्यात्वा जप्त्वा पञ्चाक्षरं मनुम्।
ततः सम्पूजयेद् देवं वीरशैवक्रमो भवेत्॥३६॥
सज्जिकान्तःस्थितं लिङ्गं स्पृष्टा मन्त्रं त्रिरुच्चरन्।
तत्र ध्यात्वा महादेवं पुष्पं मूलेन निक्षिपेत्॥३७॥
शिवो रुद्रः पशुपतिर्नीलकण्ठो महेश्वरः।
हरिकेशो विरूपाक्षः पिनाकी त्रिपुरान्तकः।
शम्भुः शूली महादेवो नामान्येतानि वै क्रमात्॥३८॥
प्रणवादिनमोऽन्तानि समुच्चार्य पृथक् पृथक्।
पुष्पैः सम्पूज्य तल्लिङ्गं करपीठे निवेशयेत्॥३९॥
अरणिस्थो यथा वह्निर्मथनादवगम्यते।
तथाऽभिव्यज्यते लिङ्गे ध्यानयोगाच्छिवः स्वयम्॥४०॥

पूजा करने से पहले शिव का ध्यान कर पंचाक्षर मन्त्र का जप करे। इसके बाद भगवान् शिव की पूजा करे। वीरशैवों की पूजा का यही क्रम है॥३६॥ सज्जिका[३] के भीतर स्थित इष्टलिंग का स्पर्श कर तीन बार मन्त्र का उच्चारण करते हुए महादेव का ध्यान कर उस इष्टलिंग पर मूल पंचाक्षर मन्त्र से पुष्प चढ़ावें॥३७॥ शिव, रुद्र, पशुपति, नीलकण्ठ, महेश्वर, हरिकेश, विरूपाक्ष, पिनाकी, त्रिपुरान्तक, शंभु, शूली और महादेव– इन बारह नामों को शिवाय, रुद्राय, पशुपतये– इत्यादि रूप से चतुर्थी विभक्ति लगा कर प्रत्येक शब्द के प्रारंभ में प्रणव (ॐकार) और अन्त में नमः पद जोड़कर इनका [४]पृथक् पृथक् उच्चारण करते हुए सज्जिका स्थित इष्टलिंग कर पुष्प चढावे। तब उस लिंग को अपने करपीठ, अर्थात् बायें हाथ की हथेली पर रखे॥३८-३९॥ अरणि काष्ठ में स्थित वह्नि जैसे उसके मथने से प्रकट होती है, उसी तरह से ध्यानयोग की सहायता से इस इष्टलिंग में भगवान् शिव अभिव्यक्त होते हैं॥४०॥

---

३. वीरशैव परम्परा में इष्टलिंग को स्वर्ण, चाँदी आदि उत्तम धातुओं से बनी सज्जिका (पेटिका) में, जो कि शिवलिंग, आम्रफल, बील्वफल के समान आकार का एक छोटासा मन्दिर होता है, रख कर उसे शिवसूत्र से संबद्ध कर शरीर पर कण्ठ आदि छः स्थानों पर धारण करते हैं।

४. ॐ शिवाय नमः, ॐ रुद्राय नमः, ॐ पशुपतये नमः, ॐ नीलकण्ठाय नमः, ॐ महेश्वराय नमः, ॐ हरिकेशाय नमः, ॐ विरूपाक्षाय नमः, ॐ पिनाकिने नमः, ॐ त्रिपुरान्तकाय नमः, ॐ शाम्भवे नमः, ॐ शूलिने नमः, ॐ महादेवाय नमः — यह मन्त्रों का स्वरूप बनेगा।

प्राणलिङ्गार्चनम्

लिङ्गसंस्थो भवेन्मन्त्रो मन्त्रसंस्थ: सदाशिव:।
उभयोरैक्यभावस्तु वीरशैवे विधीयते।
ज्ञात्वैवं प्राणलिङ्गं च कुर्यादष्टविधार्चनम्॥४१॥
जलगन्धाक्षतै: पुष्पैर्धूपदीपोपहारकै:।
ताम्बूलसहितै: प्रोक्तमष्टधा च समर्चनम्॥४२॥
करस्थलगतं लिङ्गं वामत: कृतगोमुखम्।
कनिष्ठानामिकाग्राभ्यां शिवलिङ्गं च गोमुखम्।
अङ्गुष्ठाग्रेण चैवं हि संस्पृशेदर्चनाविधौ॥४३॥

भावप्राणेष्टलिङ्गान्येकभावत: पूजयेत्

भावप्राणेष्टलिङ्गानि पूजयेदेकभावत:।
पृथग्भावं न कुर्वीत प्राणलिङ्गपरो यत:॥४४॥
स्नापनं प्रथमं कृत्वा ततो गन्धानुलेपनम्।
अक्षतांश्च समर्प्याथ पुष्पै: सम्पूजयेत् तत:॥४५॥
निवेदयित्वा नैवेद्यं ततस्ताम्बूलमर्पयेत्।
एवं समर्चनं कुर्यादिष्टलिङ्गस्य पार्वति॥४६॥

इष्टलिंग में मन्त्र स्थित है और मन्त्र में सदाशिव स्थित हैं। इस प्रकार से वीरशैव मत में इष्टलिंग और मन्त्र की एकता स्थापित की जाती है। उस इष्टलिंग को प्राणलिंग रूप जान कर उस इष्टलिंग की अष्टविध पूजा करे॥४१॥ जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल— इन आठों द्रव्यों से की गई पूजा अष्टोपचार अर्चन कहलाती है॥४२॥ करपीठ पर स्थापित इष्टलिंग का गोमुख बायीं तरफ रहना चाहिये। पूजन करते समय कनिष्ठा और अनामिका के अग्र भाग से इष्टलिंग के ऊपर के भाग का और अंगुष्ठ के अग्र भाग से गोमुख का स्पर्श करना चाहिये॥४३॥

भावलिंग, प्राणलिंग और इष्टलिंग को एक मान कर समान भाव से पूजा करनी चाहिये। इनमें परस्पर भेद की भावना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि पूजक प्राण लिंग में निष्ठा रखता है और यह प्राणलिंग भावलिंग एवं इष्टलिंग से भिन्न नहीं है॥४४॥ पहले इष्टलिंग को स्नान करावे। तब गन्ध (चन्दन) का अनुलेपन करे। इसके बाद अक्षत समर्पित पर तब पुष्पों से इष्टलिंग की पूजा करे। इसके उपरान्त धूप और दीप निवेदित करे॥४५॥ इसके बाद नैवेद्य समर्पित कर तब ताम्बूल (पान) अर्पित करे। हे पार्वति! इस तरह से इष्टलिंग की पूजा करनी चाहिये॥४६॥ जिस पूजा

तद्ध्यानं मनसा यत्र प्राणलिङ्गार्चनं मतम्।
मनोवृत्तिलयस्तत्र भावलिङ्गस्य पूजनम्॥४७॥
स्नानं पुष्पं च नैवेद्यं प्रदक्षिणनमस्क्रिये।
एभिः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेल्लिङ्गमन्वहम्॥४८॥
स्नानमुद्वर्तनं चैव वस्त्रभूषाश्च चन्दनम्।
भक्ष्यभोज्यादिकं वापि फलं पुष्पं च सौरभम्॥४९॥
एवमादीनि वस्तूनि शिवायादौ निवेद्य च।
स्वयं ततोऽनुभुञ्जीत प्रसादग्राहको मतः॥५०॥
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि शाङ्करि।
पूजयेन्नियतं लिङ्गं प्राणलिङ्गपरायणः॥५१॥

वीरशैवलक्षणम्

एवं यः कुरुते भक्त्या प्राणलिङ्गार्चनं सदा।
वीरशैवः स विज्ञेयः सर्वशैवोत्तमोत्तमः॥५२॥
अनभ्यर्च्य न भुञ्जीत लिङ्गरूपं सदाशिवम्।
यस्त्वैवं निर्वहेद् भक्तः स वै शिष्टो मम प्रियः॥५३॥

में मानसिक ध्यान द्वारा प्राणलिंग का अष्टोपचार (४२वें श्लोक में निर्दिष्ट) से पूजन किया जाता है, उसे प्राणलिंगार्चन कहते हैं। इसी प्रकार भावलिंग के पूजन में मन की सारी वृत्तियों का लय कर दिया जाता है॥४७॥ अथवा स्नान, पुष्प, नैवेद्य, प्रदक्षिणा और नमस्कार— इन पांच उपचारों से प्रतिदिन इष्टलिंग का पूजन किया जा सकता है॥४८॥ शिवभक्त को चाहिये कि वह स्नान, उबटन, वस्त्र, आभूषण, चन्दन, भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थ, फल, पुष्प, सौरभ (इत्र आदि)— इन सब वस्तुओं को पहले भगवान् को निवेदित करने के उपरान्त ही स्वयं इनका उपभोग करे, क्योंकि वह तो मात्र शिवप्रसाद को ही ग्रहण कर सकता है॥४९-५०॥ हे शांकरि पार्वति! प्राणलिंग की उपासना में लगा हुआ व्यक्ति भी एक बार, दो बार अथवा तीन बार इष्टलिंग की पूजा अवश्य करे॥५१॥

इस प्रकार जो शिवभक्त भक्तिभाव से सदा प्राणलिंग की उपासना करता है, वह वीरशैव कहलाता है। सभी प्रकार के शिवभक्तों में यह सर्वोत्तम माना जाता है॥५२॥ लिंगरूपी सदाशिव की पूजा किये बिना जो भक्त भोजन नहीं करता, इस व्रत का जो शिवभक्त सदा निर्वाह करता है, ऐसा शिष्ट पुरुष मुझे प्रिय है॥५३॥

इदमत्र रहस्यं वै श्रूयतां षट्स्थलात्मकम्।
भक्तस्थलं समासीनो भूतिरुद्राक्षसंयुतः।
षडक्षरजपं कृत्वा ततो माहेश्वरस्थले॥५४॥
हस्ते कृत्वा लिङ्गमूर्तिं प्रसादिस्थलमाश्रितः।
लिङ्गं च भक्त्या सम्पूज्य प्राणलिङ्गिस्थले ततः॥५५॥
कृत्वा शिवार्पणं देवि सानन्दं शरणस्थले।
ऐक्यस्थले प्रसादोपभोगतृप्तिमवाप्नुयात्॥५६॥
एवं समरसाद् भावादङ्गषट्स्थलयोगतः।
यः पूजयति मां देवि वीरशैवः स उच्यते॥५७॥

लिङ्गार्चनफलम्

तस्माल्लिङ्गार्चनं कुर्याद् यथायोगमतन्द्रितः।
लिङ्गे सम्पूजिते तस्मिन् पूजिताः सर्वदेवताः॥५८॥
कृत्वा षोडश दानानि यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं समवाप्नोति लिङ्गन्यस्तैकपुष्पकः॥५९॥

हे देवि! अब यहाँ तुम षट्स्थल सिद्धान्त के इस रहस्य को सुनो। भक्तस्थल का साधक भस्म और रुद्राक्ष धारण करता है और षडक्षर मन्त्र का जाप करता है। माहेश्वरस्थल में पहुंच कर वही साधक वाम हस्त में इष्टलिंग को प्रतिष्ठित करता है। तब प्रसादिस्थल में पहुंचकर वही साधक भक्तिभाव से इष्टलिंग की पूजा करता है। इसके बाद प्राणलिङ्गी स्थल की ओर बढता हुआ वही साधक जो कुछ अपना है, वह सब कुछ शिवार्पित कर देता है। तब वही शिवभक्त शरणस्थल में पहुंच कर आनन्द में निमग्न हो जाता है। अन्त में ऐक्यस्थल में प्रतिष्ठित होकर वही साधक शिवप्रसाद का उपभोग कर अनन्त तृप्तिलाभ करता है॥५६॥ हे देवि! इस तरह से समरसभाव से अङ्ग षट्स्थल की सहायता से जो शिवभक्त मेरी पूजा करता है, वह वीरशैव कहलाता है॥५७॥

इसलिये शिवभक्त को चाहिये कि वह आलस्य छोड़ कर सुविधा के अनुसार इष्टलिंग का अर्चन करे। इष्टलिंग का पूजन करने से अन्य सभी देवताओं का पूजन अपने आप हो जाता है॥५८॥ मनुष्य [५]सोलह प्रकार के दानों को करके जो फल प्राप्त करता है, वह फल उसको इष्टलिंग पर एक पुष्प रखने से भी मिल जाता है॥५९॥

---

५. षोडश दान में भूमि, आसन, जल, वस्त्र, दीपक, अन्न, ताम्बूल, छत्र, गन्ध, माल्य, फल, शय्या, पादुका, गौ, सुवर्ण और रजत — इन सोलह वस्तुओं का ग्रहण किया जाता है।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।
जपेत् पञ्चाक्षरं मन्त्रं लिङ्गं स्पृष्ट्वा विमुच्यते॥६०॥
दर्शनात् सर्वपापघ्नं स्पर्शनादखिलार्थदम्।
अर्चनान्मोक्षदं देवि लिङ्गं को वा न पूजयेत्॥६१॥
समर्चितमिदं लिङ्गं दृष्ट्वा यस्त्वनुमोदते।
स वै शिवपुरं प्राप्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्।
पुनर्भूमिं समासाद्य शिवभक्तो भवेद् ध्रुवम्॥६२॥

निन्दायां प्रत्यवायः

निन्दन्ति ये च संमूढा दृष्ट्वा लिङ्गं समर्चितम्।
तेषां पूर्वार्जितं पुण्यं तत्क्षणादेव नश्यति॥६३॥
दृष्ट्वा हसन्ति ये मूढा देवि मल्लिङ्गधारिणः।
ते ब्रह्मकल्पपर्यन्तं पच्यन्ते नरकेषु वै॥६४॥
शैवशास्त्रस्य वक्तारमाक्षिपन्ति विमोहिताः।
छिद्यन्ते क्रकचैस्तेषां जिह्वाश्च यमकिङ्करैः॥६५॥
ततो भूमौ प्रजायन्ते मूकाश्च गलरोगिणः।
श्वानयोनिशतं प्राप्य जायन्ते क्रिमयस्ततः॥६६॥

जो व्यक्ति महापातकों से युक्त है अथवा जिसने सभी प्रकार के पाप किये हैं, वह भी पंचाक्षर मन्त्र का जप करे और लिंग का स्पर्श करे, तो उनसे मुक्त हो जाता है॥६०॥ हे देवि! यह इष्टलिंग दर्शन मात्र से सभी पापों का नाश करने वाला है। इसका स्पर्श करने से समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं। इसकी पूजा करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसे इष्टलिंग की कौन पूजा नहीं करेगा? अर्थात् सभी इसकी पूजा करते हैं॥६१॥ इष्टलिंग की पूजा करते हुए देख कर जो व्यक्ति प्रसन्नता से भर जाता है, वह शिव की पुरी में जाकर यथेष्ट भोगों का उपभोग कर पुनः उस धरातल पर अवतीर्ण होकर निश्चित ही शिवभक्ति में लग जाता है॥६२॥

इष्टलिंग की पूजा करते हुए देखकर जो मूढ व्यक्ति उसकी निन्दा करते हैं, उनका पूर्वार्जित पुण्य भी तत्काल नष्ट हो जाता है॥६३॥ हे देवि! जो मूढ व्यक्ति इष्टलिंगधारी को देख कर हँसते हैं, वे ब्रह्मा के पूरे एक कल्प पर्यन्त नरक में दुःख भोगते रहते हैं॥६४॥ शैवशास्त्र का प्रवचन करने वाले की जो मूढ व्यक्ति निन्दा करते हैं, यम के किंकर उनकी जिह्वा को करौती से काटते रहते हैं॥६५॥ ऐसे व्यक्ति जब पुनः इस भोगभूमि में जन्म लेते हैं, तो गूंगे पैदा होते हैं और गले के रोग से पीडित रहते हैं। ऐसे व्यक्ति सौ बार कुत्ते की योनि में जन्म लेकर अन्त में कृमि–कीट योनि में जन्म लेते हैं॥६६॥

ममापरावताराणां लिङ्गाङ्गानां विशेषत:।
निन्दां कुर्वन्ति ये मोहात् तेषां तु निरयो गति:।।६७।।
शक्तश्चेदसतां जिह्वां छिन्द्याद् य: स्वयमेव हि।
न तस्य दोषलेशोऽस्ति शिवलोकं स गच्छति।।६८।।
अशक्तश्चेत्तदाऽन्यत्र गच्छेत्तत्र न संवसेत्।
तत्संसर्गान्महादोषं प्राप्नोति हि न संशय:।।६९।।
शिवनिन्दा भक्तनिन्दा निन्दा रुद्राक्षभस्मनो:।
यत्र प्रवर्तते देवि न तत्र दिवसं वसेत्।।७०।।
यद्गृहे भविसंसर्गस्तद्गृहं परिवर्जयेत्।
यत्रान्यदेवपूजा स्यान्न तिष्ठेत्तत्र भक्तिमान्।।७१।।

लिङ्गपूजक: पुरुषश्रेष्ठ:

यस्त्वेवमाचरन् पूजां कुर्यान्मे लिङ्गरूपिण:।
स एव पुरुषश्रेष्ठ: पूज्य: सर्वजनैरपि।।७२।।

शिव के दूसरे अवतारों की और मुख्य रूप से लिंग और अंग, शिव और शिवभक्त की जो व्यक्ति मोहवश निन्दा करते हैं, उनकी गति एकमात्र नरक की तरफ ही होती है, अर्थात् वे नरक में ही जाते हैं।।६७।। समर्थ व्यक्ति ऐसे दुष्ट मनुष्यों की जिह्वा यदि [६]स्वयं काट डालता है, तो उसको दोष का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं होता, वह तो शिवलोक को प्राप्त कर लेता है।।६८।। यदि असमर्थ है, तो ऐसी स्थिति में वह उस स्थान से दूर चला जाय, वहाँ न रहे, क्योंकि ऐसे व्यक्ति के साथ संसर्ग रखने पर वह महान् दोष का भागी होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।६९।। शिव की निन्दा, भक्त की निन्दा, रुद्राक्ष की निन्दा और भस्म की निन्दा करने वाले जहाँ प्रबल हैं, वहाँ शिवभक्त को एक दिन भी नहीं रहना चाहिये।।७०।। जिस गृह में [७]भवि रहते हैं, उस घर को छोड़ देना चाहिये। जहाँ अन्य देवताओं की पूजा होती हो, शिवभक्त को वहाँ नहीं ठहरना चाहिये।।७१।।

जो व्यक्ति ऊपर निर्दिष्ट विधि का आचरण करता हुआ इष्टलिंगरूपी शिव की पूजा करता है, वही पुरुषों में श्रेष्ठ गिना जाता है, सभी मनुष्यों का वह पूज्य हो जाता है।।७२।।

---

६. सिद्धान्तशिखामणि (९।३६) से तुलना कीजिये।

७. वीरशैव मत में इष्टलिंग को धारण न करने वाले सांसारिक जीव के लिये 'भवि' शब्द प्रयुक्त है, क्योंकि बिना इष्टलिंग को धारण किये कोई भी इस सांसारिक आवागमन से मुक्त नहीं हो सकता।

एवं लिङ्गस्वरूपं च समर्चनविधानतः।
तत्फलं च तव प्रोक्तमितः किं श्रोतुमिच्छसि ॥७३॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे लिङ्गस्वरूपनिरूपणं
नाम षष्ठः पटलः ॥६॥

हे देवि! इस तरह से मैंने तुमको इष्टलिंग का स्वरूप, उसके अर्चन की पद्धति और उस पूजन से होने वाले फल को भी भलीभाँति समझा दिया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो ॥७३॥

इस प्रकार श्री सूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह लिंग के स्वरूप का
निरूपण करने वाला छठा पटल समाप्त हुआ ॥६॥



सप्तमः पटलः

देव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वज्ञ परमेश्वर।
त्वत्प्रसादादभिव्यक्तः शिवपूजाविधिक्रमः ॥१॥
शैवाः कति कथं तेषु वीरशैवस्तु मोक्षदः।
मोक्षोत्पादकमाचारं तत्सर्वं ब्रूहि शङ्कर ॥२॥

शिव उवाच

साधु साधु महाभागे सम्यक् पृष्टमिदं त्वया।
विस्तरात् कथितुं श्रोतुं नालं वर्षायुतं शिवे ॥३॥

सप्तविधाः शैवाः

तस्मात् संक्षिप्य तत्सर्वं वक्ष्यामि तव पार्वति।
शैवाः सप्तविधा ज्ञेयास्तेषां भेदान् शृणु क्रमात् ॥४॥
अनादिशैवः प्रथम आदिशैवस्ततः परम्।
महाशैवस्ततो ज्ञेयस्त्वनुशैवस्ततः परम् ॥५॥

देवी का प्रश्न—

हे सर्वज्ञ परमेश्वर, देवों के देव महादेव! आपकी कृपा से शिवपूजा की विधि का सारा क्रम यहाँ स्पष्ट हो गया है॥१॥ हे शंकर! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि शैव कितने प्रकार के हैं और उनमें वीरशैव मत से ही मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है? मोक्ष का प्रापक आचार क्या है? यह सब आप मुझे बताइये॥२॥

शिव का उत्तर—

हे भाग्यशालिनी पार्वति! तुम बार-बार साधुवाद देने योग्य हो। तुमने यह अच्छा प्रश्न किया है। इसका उत्तर विस्तार से कहने-सुनने में तो दस सहस्र वर्ष भी पर्याप्त नहीं होगे॥३॥

इसलिये हे पार्वति! मैं तुमको यह सब संक्षेप में बता दे रहा हूँ। [१]शैव सात प्रकार के माने गये हैं। इनके भेदों को तुम क्रमशः सुनो॥४॥ प्रथम अनादिशैव है। उसके बाद दूसरा आदिशैव कहलाता है। इसके बाद तीसरा महाशैव और चौथा अनुशैव कहा गया है॥५॥ इसके बाद पाँचवाँ अवान्तरशैव और तदनन्तर

---

१. शैवभेदों का वर्णन चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के दसवें पटल में भी देखिये।

अवान्तरस्ततो ज्ञेयः प्रवरस्तदनन्तरम्।
अन्त्यशैवस्ततो ज्ञेयस्तेषां लक्षणमुच्यते॥६ ॥

अनादिशैव आदिशैवश्च

अनादिशैवो मत्तोऽन्यो नास्ति लोकेषु कश्चन।
आदिशैवास्तु विज्ञेयाः कौशिकाद्या नगात्मजे॥७ ॥
कौशिकः कश्यपश्चैव भरद्वाजात्रिगौतमाः।
आदावेते महादेवि पञ्चवक्त्रेषु दीक्षिताः॥८ ॥
तद्वंश्यानां पुनर्दीक्षा नास्ति सा चेत्तु तत्फलम्।
किन्तूपनयनादूर्ध्वं मण्डले पूज्य शङ्करम्।
पित्रादिभिश्चोपदेश्या मम मन्त्रादिकाः क्रियाः॥९ ॥
दत्त्वा तु भस्म ताम्बूलं मद्भक्तानां च भोजनम्।
दक्षिणां च ततो दद्याद् वित्तशाठ्यं न कारयेत्॥१०॥
एते शिवद्विजाः प्रोक्ताः लोकपूज्या भवन्ति हि।
एभिरेव प्रकर्तव्यं यजनं स्वपरार्थकम्॥११॥

छठा प्रवरशैव कहलाता है। अन्तिम सातवां अन्त्यशैव है। अब क्रमशः इनके लक्षण बताये जा रहे हैं॥६॥

हे हिमालय की पुत्रि! अनादिशैव तो इस लोक में मुझसे भिन्न कोई भी नहीं है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि केवल शिव ही अनादिशैव है, आदिशैवों में कौशिक आदि ऋषिगणों की गणना होती है॥७॥ हे महादेवि! [२]कौशिक, कश्यप, भरद्वाज, अत्रि और गौतम ये पांच ऋषिगण शिव के पांच मुखों से सर्वप्रथम दीक्षित हुए थे॥८॥ कौशिक आदि इन पांच ऋषिकुलों में उत्पन्न मानवों के लिये दीक्षा का कोई प्रयोजन नहीं है। तो भी उपनयन संस्कार में जैसे पिता गायत्री मन्त्र का उपदेश कहते हैं, वैसे ही यहाँ भी मण्डल में भगवान् शिव का पूजन करके पिता आदि ही शिवमन्त्र, शिवपूजन आदि का इनको उपदेश कर दें। इसका अभिप्राय यह है कि आदिशैवों के लिये पिता के अतिरिक्त दीक्षागुरु की अपेक्षा नहीं मानी जाती॥९॥ इस अवसर पर उपस्थित शिवभक्तों को भस्म और ताम्बूल देकर भोजन करावे तथा उनको दक्षिणा दे। भोजन कराने और दक्षिणा देने में कंजूसी नहीं करनी चाहिये॥१०॥ ये आदिशैव ही शैव सम्प्रदाय के अनुयायियों में द्विज माने जाते हैं। ये सभी के पूज्य हैं। इनको अपने साथ दूसरों के लिये भी यजन, पूजन आदि करने का अधिकार है॥११॥

---

२. कौशिक आदि पांच ऋषियों के नाम चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद में भी मिलते हैं (१०।७)।

महाशैव:

शैवदीक्षोक्तमार्गेण दीक्षिता ब्राह्मणाः शिवे।
महाशैवास्तु ते ज्ञेया महान्तो लोकपूजिताः॥१२॥

अनुशैवोऽवान्तरशैवश्च

अनुशैवा इति प्रोक्ता नृपा वैश्याश्च दीक्षिताः।
अवान्तराख्यशैवास्तु शूद्राश्चेद् दीक्षिता यदि॥१३॥

प्रवरशैवोऽन्त्यशैवश्च

कुलालपार्श्वकाद्यश्च प्रवरः शैव उच्यते।
अन्यासामन्त्यजातीनामन्त्यशैवं विधीयते॥१४॥

आचारभेदाच्छैवभेद:

एवं प्रोक्ताः शैवभेदा जात्यनुक्रमशो मया।
आचारभेदाच्छैवस्य भेदः संकथ्यतेऽधुना॥१५॥
सामान्यशैवं प्रथमं मिश्रशैवं ततः परम्।
शुद्धशैवं ततो ज्ञेयं वीरशैवं ततः परम्।
एतेषां लक्षणं वक्ष्ये शृणु देवि यथाक्रमम्॥१६॥

हे शिवे! शैवागमों में प्रतिपादित दीक्षाविधि से दीक्षित ब्राह्मण महाशैव कहलाते हैं। ये महाशैव लोक में अत्यन्त पूजनीय है॥१२॥

दीक्षासम्पन्न क्षत्रिय और वैश्य अनुशैव कहलाते हैं। यदि कोई शूद्र भी योग्यता के आधार पर शैव दीक्षा को प्राप्त करते हैं, तो वे अवान्तरशैव कहलाते हैं॥१३॥

कुलाल (कुम्हार), पार्श्वक (पीठमर्दक) आदि दीक्षा प्राप्त कर लेने पर प्रवरशैव कहलाते हैं। इनसे भिन्न अन्य सभी अन्त्य जातियों के दीक्षासम्पन्न व्यक्ति अन्त्यशैव के नाम से प्रसिद्ध होते हैं॥१४॥

इस तरह से यहाँ पर मैंने जाति के आधार पर शैवों के भेदों का निरूपण किया है। अब मैं आचार के भेद से विभक्त शैवों के भेदों को बताऊंगा॥१५॥ इनमें प्रथम सामान्यशैव, तब दूसरा मिश्रशैव, तीसरा शुद्धशैव और चौथा भेद वीरशैव के नाम से प्रसिद्ध है। हे देवि! अब मैं आनुपूर्वी से इनके लक्षण बताता हूँ। तुम उनको सावधानी से सुनो॥१६॥

सामान्यशैव:

यदा यदा शिवं पश्येत् तदा कुर्याच्छिवार्चनम्।
प्रदक्षिणनमस्कारौ दर्शनं वा समाचरेत्।
नास्ति पूजादिनियमो यथासम्भवमाचरेत्॥१७॥
शिवचिह्नेषु भक्तेषु शिवकार्येषु पार्वति।
भक्तिं कुर्वीत सततं मनोवाक्कायकर्मभि:।
सामान्यशैवमाख्यातं मिश्रशैवमथ शृणु॥१८॥

मिश्रशैव:

शिवं विष्णुं च ब्रह्माणं कुमारं गणनायकम्।
आदित्यमम्बिकां चैव मिश्रीकृत्य समर्चनम्॥१९॥
सर्वत्र देवताबुद्धिर्माहात्म्यं शिव एव हि।
शिवधर्मान्यधर्माणां समाचरणमादरात्॥२०॥
अन्यपूजामिश्रितत्वाद् मिश्रशैवमुदीरितम्।
अत: परं शुद्धशैवं वक्ष्यामि शृणु पार्वति॥२१॥

जब जब शिव को देखे, तब तब उनकी पूजा करे, प्रदक्षिणा और नमस्कार करे अथवा केवल दर्शन करे। यहाँ पूजा आदि का कोई नियम नहीं है। जो जब संभव हो, वही उस समय करे॥१७॥ हे पार्वति! इस सामान्यशैव को इतना ही करना है कि मन, वचन और शरीर से भस्म, रुद्राक्ष आदि शिव के चिह्नों के प्रति, शिवभक्तों के प्रति और शिव के कार्यों (चरित्रों) के प्रति सदा भक्ति-भाव से परिपूर्ण रहे। अब तुम मिश्रशैव के लक्षण सुनो॥१८॥

मिश्रशैव शिव, विष्णु, ब्रह्मा, कुमार (स्कन्द), गणनायक (गणेश), आदित्य (सूर्य), अम्बिका (शक्ति)— इन सबको मिलाकर समान भाव से पूजा करता है। अभिप्राय यह है कि इन सबको मिलाकर पूजा करने के कारण ही ये मिश्रशैव कहलाते हैं॥१९॥ सर्वत्र समान रूप से देवताबुद्धि रखता हुआ भी यह शिव का विशेष माहात्म्य मानता है और पूरे आदर के साथ इन सभी धर्मों में विहित आचारों का आदरपूर्वक पालन करता है॥२०॥ अन्य देवताओं की पूजा भी इस सम्प्रदाय में मिली जुली हुई है, अत: इसको मिश्रशैव कहा जाता है। हे पार्वति! अब मैं आगे शुद्धशैव का लक्षण बताऊँगा। तुम उसे सावधानी से सुनो॥२१॥

शुद्धशैवः

शुद्धः शिव इति प्रोक्तस्तद्भवं शैवमुच्यते।
उभयोः सम्पुटीभावाच्छुद्धशैवमिति स्मृतम्॥२२॥
एक एव महादेवः साम्बः सत्यादिलक्षणः।
तदन्यदेवास्तद्भक्तास्तदुद्भूतास्तदाश्रिताः ॥२३॥
शिवस्य पूजावेलायां ये चान्ये देवसत्तमाः।
तेषामावरणत्वेन पूजां कुर्यान्न चान्यथा॥२४॥
गुरुणा दत्तलिङ्गं तु करपीठेऽपि वा यजेत्।
गुरूपदिष्टनियमान् सावधानं समाचरेत्॥२५॥
प्रमादात् पतिते लिङ्गे नष्टे दग्धे हृतेऽपि वा।
विनिर्गते तथा पीठाद् येन केन च दूषिते॥२६॥
गुरुपादाम्बुजं स्मृत्वा जप्त्वाऽघोरं तदाज्ञया।
तल्लिङ्गमेव वाऽन्यद्वा धारयेत् पूजयेत् पुनः॥२७॥

यहाँ शुद्ध शब्द से साक्षात् शिव का ही बोध होता है। इस शिव से जिसका उद्भव हुआ, वह शैव कहलाता है। इस प्रकार साक्षात् शिव के द्वारा जिसका उपदेश किया गया, इस अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिये शुद्ध और शैव ये दोनों पद आपस में मिलकर शुद्धशैव सम्प्रदाय का बोध कराते हैं॥२२॥ शुद्धशैव मानते हैं कि जगदम्बा पार्वती के साथ विद्यमान एकमात्र शिव ही सत्य, ज्ञान, आनन्द लक्षण ब्रह्म है। अन्य सब देवता शिव के भक्त हैं, शिव से उत्पन्न हुए हैं और उन्हीं के सहारे स्थित हैं॥२३॥ यह शुद्धशैव शिव की जब पूजा करे, तब अन्य देवताओं की पूजा आवरण देवताओं के रूप में ही करे, प्रधान देवता के रूप में नहीं॥२४॥ ये शुद्धशैव गुरु के द्वारा प्रदत्त इष्टलिंग का पूजन अपने वाम करपीठ में रख कर भी कर सकते हैं। गुरु के द्वारा उपदिष्ट नियमों का पालन इनको सावधानी से करना चाहिये॥२५॥ असावधानी के कारण इष्टलिंग के गिर पड़ने पर, नष्ट हो जाने पर, दग्ध हो जाने पर, चुरा लिये जाने पर अथवा पीठ से अलग हो जाने पर और जिस किसी के द्वारा दूषित कर दिये जाने पर गुरु के चरण-कमलों का ध्यान कर और अघोर मन्त्र का जप कर गुरु की आज्ञा के अनुसार उसी लिंग को अथवा दूसरे लिंग को धारण करे और पुनः उसका पूजन आरंभ करे॥२६-२७॥ प्रमादवश नियम का लोप हो

प्रमादान्नियमे लुप्ते मूलपञ्चाक्षरीं जपेत्।
प्रायश्चित्तमिदं देवि व्रताचारादिलोपने।
शुद्धशैवमिदं प्रोक्तं वीरशैवमथ शृणु ॥२८॥

वीरशैवः

वीतरागादिदोषत्वादात्मतत्त्वविचारणात्।
विकल्पाकल्पशून्यत्वाद् वीरशैवमिति स्मृतम् ॥२९॥
सामान्यं प्रथमं प्रोक्तं विशेषं च द्वितीयकम्।
निराभारं तृतीयं स्यात् क्रमाल्लक्षणमुच्यते ॥३०॥

सामान्यवीरशैवः

गुरूक्तेनैव मार्गेण भूतिरुद्राक्षधारणम्।
पञ्चाक्षरजपं देवि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः।
गुरुणा दत्तलिङ्गं तु सावधानेन धारयेत् ॥३१॥
इष्टलिङ्गं प्राणलिङ्गं भावलिङ्गं च पार्वति।
एकीकृत्यार्चनं कुर्याद् वीरशैवो न भेदतः ॥३२॥

जाने पर मूल पंचाक्षरी मन्त्र का जप करे। हे देवि! व्रतपालन या नियमाचार के पालन में कोई त्रुटि आने पर सर्वत्र उसी प्रायश्चित्त का सर्वत्र विधान किया गया है। ये सब बातें शुद्धशैव के संबन्ध में कही गई हैं। अब तुम वीरशैव का लक्षण सुनो ॥२८॥

जिसके राग-द्वेष आदि सारे दोष दूर हो गये हैं, आत्मतत्त्व की विचारणा में जो सदा लगा रहता है और जिसके सारे विकल्पजाल नष्ट हो गये हैं, वही वीरशैव कहलाता है ॥२९॥ ये वीरशैव तीन प्रकार के हैं। पहला सामान्य वीरशैव, दूसरा विशेष वीरशैव और तीसरा निराभार वीरशैव कहलाता है। अब तुम इनके लक्षणों को क्रमशः सुनो ॥३०॥

हे देवि! सामान्य वीरशैव गुरु के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से नित्य भस्म और रुद्राक्ष धारण करता है। पंचाक्षर मन्त्र का जप नित्य बिना प्रमाद के करता है और गुरु के द्वारा प्रदत्त इष्टलिंग को सावधानी से धारण करता है ॥३१॥ हे पार्वति! वीरशैव को इष्टलिंग, प्राणलिंग और भावलिंग की एक भाव से, अर्थात् इन सबको अभिन्न मान कर पूजा करनी चाहिये। इनको अलग अलग मानकर पूजा नहीं करनी चाहिये ॥३२॥

जङ्गमे निजलिङ्गैक्ये निर्भावे निर्मले परे।
भक्तिं कुर्यान्महादेवि स्वयं दारसुतादिभिः।
मम लिङ्गाङ्गसङ्गानां वञ्चनान्नरकं ध्रुवम्॥३३॥
तस्माद् यत्नेन मद्भक्तैर्वीरमाहेश्वरात्मनाम्।
सेवा कार्या महादेवि मनोवाक्कायकर्मभिः॥३४॥
गोत्रं च शिवगोत्रं च नामापि शिवनाम च।
सदाशिवौ च पितरौ बान्धवाः शिवकिङ्कराः॥३५॥
शिवार्थार्पितदेहाद्याः सुहृदः परिकीर्तिताः।
शिवकार्याभिमानश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥३६॥
कराब्जपीठे यजनं धारणं सज्जिकान्तरे।
यद्वा कराब्जे वक्त्रे वा धारणं मोक्षकारणम्॥३७॥
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि शाङ्करि।
लिङ्गस्य यजनं कुर्याल्लिङ्गाचारपरायणः॥३८॥

हे महादेवि! सामान्य वीरशैवों को अपने पत्नी-पुत्र आदि के साथ भक्तिभाव प्रदर्शित करना चाहिये। ऐसा न कर जो सामान्य वीरशैव लिंगांगसंगियों के साथ वंचना करता है, तो उसे अवश्य ही नरक की प्राप्ति होती है॥३३॥ हे महादेवि! इसलिये मेरे भक्त इन सामान्य वीरशैवों को इन वीरमाहेश्वरों (जंगमों) की यत्नपूर्वक वचन और कायकर्म से सेवा करनी चाहिये॥३४॥ ऐसे सामान्य वीरशैवों का शिवगोत्र ही गोत्र है, शिव का नाम ही इनका नाम है, सदाशिव-पार्वती ही इनके माता-पिता हैं और शिव के किंकर ही इनके बन्धु हैं। शिव के प्रयोजन के लिये देह आदि को समर्पित कर देने वाले ही इनके मित्र हैं। शिव कार्य को करने तक ही इनका अभिमान सीमित है और तीनों भुवन इनका स्वदेश है॥३५-३६॥ करकमल रूपी पीठ पर इष्टलिंग की पूजा करना, सज्जिका के भीतर रखकर उसको धारण करना अथवा करकमल में या कण्ठ में उसे धारण करना, इतने मात्र से इन सामान्य वीरशैवों को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है॥३७॥ हे शांकरि! लिंगाचार[३] का नियमित रूप से पालन करने वाला यह सामान्य वीरशैव एक बार, दो बार या दिन में तीन बार इष्टलिंग की पूजा करे॥३८॥

---

३. वीरशैवों के पांच आचारों में लिंगाचार का भी समावेश है। चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के नवम पटल में इसका विशेष विवरण देखिये।

विशेषवीरशैवः

इत्येवमाचरन् धर्मान् विशेषं शैवमाचरेत्।
विशिष्टधर्मानुष्ठानाद् विशेष इति कथ्यते॥३९॥
एकं माहेश्वरं वापि द्वौ वा त्रीन् वा महेश्वरि।
भोजयित्वा तत्प्रसादं भुञ्जीत प्रतिवासरम्॥४०॥
द्रोणपुष्पं बिल्वपत्रं करवीरमथापि वा।
मल्लिकोत्पलपुन्नागजात्यादिकुसुमानि वा॥४१॥
एष्वेकं कुसुमं नित्यमर्पयेन्नियमान्वितः।
नैवेद्यधूपदीपांश्च तथा नित्यं समर्पयेत्॥४२॥
इत्यादिनियमान् यस्तु निर्वहेज्जीविताविधि।
स एवाहं महादेवि विशिष्टशिवपूजकः॥४३॥
आत्मानं वा सुतान् वापि सदनं च धनादि वा।
भूषणं सर्ववस्तूनि वाहनानि पशूनपि।
यत् स्वकीयमभिप्रेतं तत्कुर्याज्जङ्गमार्पितम्॥४४॥
अनुभूतं तु तैः पश्चादादाय स्वयमादरात्।
कुर्यात् प्रसादबुद्ध्या यः स विशिष्ट इति स्मृतः॥४५॥

इस तरह से सामान्य वीरशैवों के लिये निर्दिष्ट धर्मों का पालन करने वाला शिवभक्त विशेष शैवाचारों के पालन की ओर बढे। विशिष्ट धर्मों का अनुष्ठान करने से वह विशेष वीरशैव कहलाता है॥३९॥ हे माहेश्वरि! यह विशेष वीरशैव एक, दो या तीन माहेश्वरों को प्रतिदिन भोजन करा लेने के बाद ही स्वयं उनका प्रसाद ग्रहण करे॥४०॥ द्रोणपुष्प, विल्वपत्र, अथवा करवीर पुष्प तथा मल्लिका, उत्पल (कमल), पुन्नाग आदि और जाति आदि पुष्पों में से किसी एक पुष्प को नित्य नियमपूर्वक इष्टलिंग पर अर्पित करे। उसी तरह से नित्य, नैवेद्य, धूप, दीप आदि भी समर्पित करे॥४१-४२॥ हे महादेवि! इस तरह के नियमों का जो शिवभक्त जीवन पर्यन्त निर्वाह करता है, ऐसा विशिष्ट शिवपूजक साक्षात् शिव ही हो जाता है॥४३॥ ऐसा विशेष वीरशैव स्वयं अपने को, अपने पुत्रों को, अपने घर को, अपने धन को, आभूषणों को, वाहनों को, पशुओं को और अन्य भी उन सब वस्तुओं को, जिनको कि वह अपना समझता है, जंगम को समर्पित कर देने में संकोच न करे॥४४॥ जंगमों के द्वारा उपभुक्त उन सब पदार्थों को बाद में स्वयं आदरपूर्वक ग्रहण करे और उन सबका प्रसाद के रूप में अपने लिये उपयोग करे॥४५॥ जंगमों को समर्पित

भक्ष्यभोज्यादिवस्तूनि यो भुङ्क्ते चरवर्जितः।
स भुङ्क्ते मलमांसादि श्वपाकागारसम्भवम्॥४६॥
शिवकार्यविरुद्धाश्चेद् भर्तृभार्यात्मजादयः ।
परित्याज्यास्ते विशेषवीरशैवपरायणैः॥४७॥

लिङ्गनिष्ठा

लिङ्गभक्तिर्लिङ्गपूजा लिङ्गसेवा तथा शिवे।
लिङ्गध्यानं लिङ्गमनो लिङ्गचर्यापरौ करौ॥४८॥
लिङ्गश्रुतिपरे श्रोत्रे लिङ्गार्पितरसादयः।
लिङ्गनिर्माल्यसुरभिलाभो घ्राणस्य पार्वति॥४९॥
लिङ्गालङ्कारसन्दर्शनासक्ते लोचनेऽपि च।
लिङ्गप्रदक्षिणपरौ पादौ च गिरिसम्भवे॥५०॥
लिङ्गस्य पुरतो नित्यं तदर्थं चाङ्गचेष्टनम्।
लिङ्गार्थं दत्तसर्वस्वं लिङ्गनिष्ठेति गीयते॥५१॥

किये बिना जो शिवभक्त भक्ष्य, भोज्य आदि वस्तुओं को अपने उपयोग में लाता है, वह चंडाल के घर की विष्ठा और मांस का ही भक्षण करता है॥४६॥ पति, पत्नी, पुत्र आदि अपने परिवार के सदस्य यदि शिवकार्य से विमुख हैं, तो विशेष वीरशैव धर्म का आचरण करने वालों को इनका परित्याग कर देना चाहिये॥४७॥

हे शिवे! इनको लिंग में भक्ति रखनी चाहिये, लिंग की पूजा, लिंग की सेवा और लिंग का ध्यान करना चाहिये, लिंग में मन लगाना चाहिये और अपने हाथों को भी लिंग की पूजा में समर्पित कर देना चाहिये॥४८॥ हे पार्वति! इस विशेष वीरशैव के दोनों कान लिंग के गुणगान के श्रवण में लगे रहने चाहिये। लिंग को समर्पित रस आदि का ही इसे ग्रहण करना चाहिये और उसकी घ्राणेन्द्रिय भी लिंग के निर्माल्य के रूप में प्राप्त पुष्प आदि की सुगन्धि से तृप्त होनी चाहिये॥४९॥ हे गिरिपुत्रि! इसके नेत्र लिंग को समर्पित अलंकरण को देखने में आसक्त रहने चाहिये। इसके चरण भी लिंग की प्रदक्षिणा करने में लगे हुए होने चाहिये॥५०॥ इष्टलिंग के सामने ही इस विशेष वीरशैव को अपनी सारी अंगचेष्टाएँ इसके प्रसाद के लिये करनी चाहिये। जब यह इष्टलिंग के लिये अपना सब कुछ समर्पित कर देता है, तो इसी को लिंगनिष्ठा[४] कहा जाता है॥५१॥

---

४. 'निष्ठा' शब्द पर ऊपर पांचवें पटल की १८वी टिप्पणी देखिये।

इष्टलिङ्गात्यये दोषः

लिङ्गं पतिः सती चाहं भावोऽयं वीरशैविनाम्।
तस्माल्लिङ्गात्यये देवि सद्यः प्राणान् परित्यजेत्॥५२॥
दीक्षायां गुरुणा लिङ्गं धारितं गिरिजे यदा।
तदाप्रभृति लिङ्गाङ्गसम्बन्धी स्यान्निरन्तरम्॥५३॥
इष्टलिङ्गे परे लुप्ते लिङ्गमन्यन्न धारयेत्।
पुनस्तदेव लब्धं चेद् धारयेद् देव्यशङ्कितः॥५४॥
जले वा पतितं लिङ्गं पुनर्दृष्टं तदेव हि।
धारयेदवधानेन वीरशैवो न दुष्यति॥५५॥
यवमात्रं यदि च्छिन्ने तदर्धार्धमथापि वा।
लिङ्गे पीठादिके वापि प्रायश्चित्तं न विद्यते॥५६॥
दैवाद् विनिर्गतं शक्तिपीठाल्लिङ्गमखण्डितम्।
पुनर्बद्ध्वा धारयितुं न केनाप्यलमद्रिजे॥५७॥

हे देवि! इस विशेष वीरशैव के मन में यह भाव रहना चाहिये कि लिंग मेरा पति है और मैं उसकी सती हूँ। इसीलिये लिंगरूपी पति के नष्ट हो जाने पर वीरशैव को सती के समान अपना प्राणत्याग कर देना चाहिये॥५२॥ हे गिरिजे! दीक्षा देते समय गुरु ने जब इष्टलिंग धारण करा दिया, तब से उसे निरन्तर उस इष्टलिंग को अपने अंग से कभी अलग नहीं करना चाहिये॥५३॥ हे देवि! इस गुरुप्रदत्त श्रेष्ठ इष्टलिंग के लुप्त हो जाने पर दूसरा लिंग धारण न करे। यदि वही लिंग पुनः मिल जाता है, तो उसे बिना शंका के धारण कर लेना चाहिये॥५४॥ यदि इष्टलिंग नदी आदि के जल में गिर पड़ा है और वह पुनः मिल गया है, तो उसे सावधानी के साथ पुनः धारण कर लेना चाहिये। ऐसा करने पर वीरशैव को कोई दोष नहीं लगता॥५५॥ लिंग के अथवा पीठ आदि के एक जौ के बराबर, आधे या चौथाई जौ के बराबर कट जाने पर भी प्रायश्चित्त की कोई आवश्यकता नहीं मानी गई है॥५६॥ हे अद्रिजे! दुर्भाग्यवश शक्तिपीठ से लिंग के अलग हो जाने पर भले ही वह लिंग अखण्डित हो, उसको पुनः बांधकर धारण करना कभी भी उचित नहीं है॥५७॥

इष्टलिङ्गस्य पुनः संस्कारः

नादबिन्दुकलारूपं कर्मसादाख्यमुच्यते।
बिन्दोर्विनिर्गते नादे कला ह्यन्यत्र गच्छति।
तत्पुनः पूरणं कर्तुं पुनः संस्कारमर्हति॥५८॥
पुनर्दीक्षादिसंस्कारः शुद्धशैवे विधीयते।
वीरशैवे पुनर्दीक्षा नेति भेदो वरानने॥५९॥

लिङ्गलोपादिषु तनुत्यागो विधेयः

लिङ्गलोपादिदोषेषु व्रतचर्यादिलोपने।
प्राणान् धत्ते प्राणलिङ्गी सोऽन्धे तमसि मज्जति।
तस्मात् तत्प्राणलिङ्गं तु सावधानेन धारयेत्॥६०॥
लिङ्गार्थमेव यः प्राणांस्त्यजेदैक्यं दृढं मयि।
स प्राप्नोति न सन्देहः सत्यं सत्यं वरानने॥६१॥
लिङ्गार्थं वापि गुर्वर्थमाचारार्थं तथैव च।
चरार्थं वा प्रसादार्थं तनुत्यागो विधीयते।
एवं निष्ठा तु यस्यास्ति गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥६२॥

नाद, बिन्दु और कला से सम्पन्न यह इष्ट लिंग [५]कर्मसादाख्य के नाम से प्रसिद्ध है। बिन्दु (शक्ति) से नाद (शिव) के अलग हो जाने पर उसमें स्थापित कला अन्यत्र चली जाती है। उसकी पूर्ति के लिये पुनः संस्कार करना पड़ता है॥५८॥ हे वरानने! शुद्धशैव मत में तो यह दीक्षासंस्कार पुनः किया जा सकता है, किन्तु वीरशैव मत में पुनः दीक्षा का विधान नहीं है। यही इन दोनों मतों में भेद है॥५९॥

इष्टलिंग के नष्ट हो जाने जैसे दोषों के उपस्थित होने पर और इस तरह से व्रत, चर्या आदि का लोप हो जाने पर जो प्राणलिंगी प्राणों को धारण करता है, वह अन्धकार से भरे नरक में डूब जाता है। इसलिये इस प्राणलिंग को पूरी सावधानी के साथ धारण करना चाहिये॥६०॥ हे वरानने! इष्टलिंग का वियोग होने पर जो वीरशैव अपने प्राणों को त्याग देता है, वह दृढ़ता से मेरे साथ समरसभाव को प्राप्त कर लेता है। यह बात सही है, सही है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहना चाहिये॥६१॥ लिंग के लिये, गुरु के लिये, आचार के पालन के निमित्त, जंगम के लिये और उसी तरह से प्रसाद के लिये मैं अपने शरीर को भी छोड़ सकता हूँ, ऐसी दृढ निष्ठा जिसकी है, वह भले ही गृहस्थ हो, अवश्य मुक्त हो जाता है॥६२॥ हे देवि! इस तरह से मैंने

---

५. पंचविध सादाख्य तत्त्व का निरूपण इसी ग्रन्थ के प्रथम पटल में देखा जा सकता है (१।२३-२६)। वहाँ कर्मसादाख्य का स्थान पाँचवां है।

इति प्रोक्तं मया देवि विशेषं वीरशैवकम्।
निराभारमतो वक्ष्ये समाहितमनाः शृणु ॥६३॥

निराभारवीरशैवः

जन्तोः पुण्यं पापमिति कर्म द्विविधमुच्यते।
निवृत्तकर्मभारत्वान्निराभार इति स्मृतः ॥६४॥
जटी मुण्डी शिखी वापि काषायवसनान्वितः।
निस्पृहो निजलिङ्गैक्यो भिक्षाशी भयवर्जितः॥
मौनी भूतदयायुक्तो निराभार इति स्मृतः ॥६५॥
कन्थाकमण्डलुधरो भूतिरुद्राक्षसंयुतः।
दण्डकौपीनधारी च निराभार इति स्मृतः ॥६६॥
माहात्म्यं जटिनां यत् स्यान्मुण्डिनां च तदेव हि।
वन्यैः पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैर्लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥६७॥

निराभारवीरशैवचर्या

कामक्रोधादिरहितः शिवज्ञानी जितेन्द्रियः।
जङ्गमस्तु चरेद् भिक्षां यावत् स्वोदरपूरणम् ॥६८॥

यह विशेष वीरशैव के विषय में तुमको बताया है। अब मैं निराभार वीरशैव के विषय में कहूँगा। तुम उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥६३॥

कोई भी प्राणी पुण्य अथवा पाप ये दो तरह के कर्म करता है। इन दोनों तरह के कर्मों के भार से जो मुक्त है, वह निराभार वीरशैव कहलाता है ॥६४॥ यह निराभार वीरशैव जटा धारण करने वाला, मुण्डन कराने वाला अथवा शिखा धारण करने वाला हो सकता है। यह काषाय वस्त्र पहनता है, निस्पृह है। अपने इष्टलिंग के साथ ऐक्यभाव को प्राप्त है, भिक्षा मांगने से प्राप्त भोजन को ग्रहण करता है। निर्भय है, मौन धारण करता है और सभी प्राणियों पर दयाभाव रखता है ॥६५॥ भस्म और रुद्राक्ष से विभूषित यह निराभारी वीरशैव अपने हाथों से दण्ड और कमण्डलु धारण किये रहता है ॥६६॥ जटा धारण करने वाले की जो महिमा है, वही माहात्म्य मुण्डन कराने वाले निराभार वीरशैव का भी है। यह निराभार वीरशैव वन में पैदा हुए पत्र, पुष्प और फल से अपने इष्टलिंग की पूजा करे ॥६७॥

काम, क्रोध आदि दोषों से अस्पृष्ट रहकर यह जितेन्द्रिय शिवज्ञानी निराभार वीरशैव (जंगम) उतनी भिक्षा माँगे, जिससे उसकी उदरपूर्ति हो जाय ॥६८॥ हे देवि ! यह निराभार वीरशैव गृहस्थों पर दया करता हुआ माधुकरी भिक्षा एकत्र करे, अर्थात् भ्रमर जैसे नाना

चरेन्माधुकरीं भिक्षां निराभारो दयापरः।
एकान्नं तु न चाश्नीयाद् देवि तद्दोषकृद् यतः ॥६९॥
यथा मधुकरः पुष्पान्मधु गृह्णाति पार्वति।
तथा गृहस्थाद् भिक्षेत उपवाससमो विधिः ॥७०॥
भक्तैर्गृहस्थैः सम्पूज्या एते माहेश्वरा जनाः।
एतान् विना कृता पूजा नितरां निष्फला भवेत् ॥७१॥
न वस्तुसंग्रहं कुर्याद् यत्र कुत्रापि जङ्गमः।
दत्तं दद्याच्च भक्तेभ्यो दरिद्रेभ्यो दयान्वितः ॥७२॥
सुवर्णरत्नधान्यादिवस्तुवृद्ध्युपजीवनात् ।
अत्याश्रमी यदि चरेत् सोऽयं पातकिनां वरः ॥७३॥
जटाधारी शिखी मुण्डी पञ्चमुद्रासमन्वितः।
स्त्रीसङ्गं कुरुते यस्तु स मद्द्रोही न संशयः ॥७४॥

प्रकार के पुष्पों से मधु एकत्र करता है, उसी तरह अनेक गृहस्थों के घर जाकर उनसे थोड़ी-थोड़ी भिक्षा ग्रहण करे। वह किसी एक ही जगह का अन्न ग्रहण न करे, क्योंकि वह दोषकर माना गया है॥६९॥ हे पार्वति! जैसे भ्रमर अनेक पुष्पों के पास जाकर उनसे मधु ग्रहण करता है, उसी तरह निराभार वीरशैव भी अनेक गृहस्थों से भिक्षा एकत्र करे। इस प्रकार की भिक्षा का उपवास के समान माहात्म्य है॥७०॥ भक्त गृहस्थों को इन माहेश्वरों (जंगमों) की पूजा करनी चाहिये। इनका पूजन किये बिना की गई देवपूजा पूरी तरह से निष्फल हो जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि जंगमों की पूजा से ही देवपूजा भी सफल होती है॥७१॥ यह जंगम निराभार वीरशैव जिस किसी भी स्थान में वस्तुओं का संग्रह न करे। यदि कोई कुछ इसे देता है, तो उसे अपने दरिद्र भक्तों में कृपापूर्वक वितरण कर देना चाहिये॥७२॥ अत्याश्रमी, अर्थात् सभी वर्णाश्रम धर्मों को छोड़ देने वाला यह निराभार वीरशैव यदि सुवर्ण, रत्न, धान्य आदि वस्तुओं को बढाने में अपने जीवन को लगा देता है, तो यह सभी पातकियों में श्रेष्ठ माना जायगा। इसका भाव यह है कि निराभारी वीरशैव को क्षणिक भौतिक सम्पत्ति के संचय करने में अपना अमूल्य जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिये॥७३॥ जटाधारी, शिखावाला अथवा मुण्डित मस्तक वाला निराभार वीरशैव [६]पांच मुद्राओं से समन्वित होता हुआ भी यदि स्त्री-संग करता है, तो वह शिवद्रोही है, इसमें कोई संशय नहीं है॥७४॥ प्राणलिंग

---

६. यहाँ पंचमुद्रा शब्द का अभिप्राय पाँच शिवलिंग और पाँच नन्दियों से अंकित पात्रविशेष से है, जो कि निराभार या साभार पट्टाभिषेक के समय दिया जाता है। यह पात्र पंचलोह से निर्मित होता है। बिना पट्टाभिषेक के निराभारी के लिये कन्था, खट्वांग, दण्ड-कमण्डलु, झोली और कामाक्ष ये पाँच मुद्राएं मानी गई हैं।

अतिवर्णाश्रमी मुण्डी प्राणलिङ्गाङ्गयोगभाक्।
न धारयेच्छिरोवस्त्रमुष्णीषं वा न धारयेत् ॥७५॥
छिन्नभिन्नादिदुष्टं च यद्वल्लिङ्गं न पूज्यते।
लिङ्गाचारव्रतभ्रष्टो जङ्गमस्तु न पूज्यते ॥७६॥
जङ्गमो जङ्गमं दृष्ट्वा न प्रणामं करोति यः।
स एव जङ्गमद्रोही मद्द्रोही च न संशयः ॥७७॥
जङ्गमं द्वेष्टि यो मोहात् स तु मां द्वेष्टि शाङ्करि।
तस्मादन्योन्यमपि च पूज्याः स्युर्जङ्गमस्थले ॥७८॥
शिवभक्तिः शिवज्ञानं शिवमुद्रा शिवव्रतम्।
शिवलिङ्गार्चनश्रद्धा वृत्त्यन्तरनिरोधनम्।
एते धर्मा यत्र सन्ति स भाराभारवर्जितः ॥७९॥

जङ्गममहिमा

षट्स्थलज्ञानसम्पन्नः षडङ्गाङ्गसमाधिमान्।
आत्मवत् परद्रष्टा च स एवाहं न संशयः ॥८०॥

के साथ इष्टलिंग को संयुक्त करने की सामर्थ्य वाला अतिवर्णाश्रमी मुण्डी निराभार वीरशैव शिरोवस्त्र अथवा पगड़ी आदि धारण न करे ॥७५॥ टूट-फूट हो जाने पर शिवलिंग जैसे अपूज्य हो जाता है, उसी तरह से लिंगाचार से भ्रष्ट जंगम भी पूजनीय नहीं रह जाता ॥७६॥ जो जंगम दूसरे जंगम को देख कर प्रणाम नहीं करता, वह जंगमद्रोही ही नहीं, निःसन्देह मेरे साथ भी द्रोह करने वाला है ॥७७॥ हे शांकरि! जो व्यक्ति मोहवश जंगम के साथ द्वेष करता है, वह एक प्रकार से मेरे साथ ही द्वेष करता है। इस लिये जहां जंगमों का निवास है, वहां जंगमों को आपस में भी एक दूसरे की पूजा करनी चाहिये ॥७८॥ शिव में भक्ति, शिव का ज्ञान, शिव की मुद्रा, शिव का व्रत, शिवलिंग की पूजा में श्रद्धा, चित्त की असत् वृत्तियों का निरोध — ये सब धर्म जहाँ हैं, वही वास्तविक निराभार वीरशैव कहलाता है ॥७९॥

षट्स्थलों के ज्ञान से सम्पन्न, शिव के [७]सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतन्त्रता, अनन्तशक्ति, अलुप्तशक्ति नामक षड्विध अंगों में समाहित चित्त वाला, अपने समान ही सबको देखने वाला निराभार वीरशैव निःसन्देह साक्षात् मैं ही हूँ, अर्थात् ऐसा निराभारी वीरशैव शिवस्वरूप ही हो जाता है ॥८०॥ हे पार्वति! यह श्रेष्ठ निराभार वीरशैव जहाँ

---

७. सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥
भगवान् शिव के सर्वज्ञता आदि षड्विध अंगों का निदर्शक यह श्लोक वायुपुराण (१२।३३) आदि में तथा अनुभवसूत्र (४।२०) में भी उपलब्ध है।

वीरशैवः परो यस्तु यत्र तिष्ठति पार्वति।
तत्तीर्थं तत्तपः शान्तिस्तत्र तिष्ठामि सर्वदा॥८१॥
तीर्थयात्रादिकं तेषां नास्ति चान्यत्र पार्वति।
कैलासादिपदापेक्षां त्यजेल्लिङ्गाङ्गयोगभाक्॥८२॥
यत्रान्यदेवतापूजा तत्स्थानं परिवर्जयेत्।
शिवभक्तिविहीनं च जनं नैव समाश्रयेत्॥८३॥
आदातृदातृदेयानां शिवचिह्नं सुशोभनम्।
शिवचिह्नाङ्कितं ग्राह्यमन्यच्चण्डालविट्समम्॥८४॥
सर्वं शिवमयं पश्येदन्यभावो न विद्यते।
लिङ्गाङ्गसम्बन्धपदार्थज्ञानं मोक्षसाधनम्॥८५॥

लिङ्गाराधनमहिमा

तदेकमेव मोक्षः स्यान्मम लिङ्गाङ्गयोगिनः।
तस्मात् सर्वैः सदा कार्यं लिङ्गाराधनमादरात्॥८६॥

रहता है, वहीं तीर्थ है, वहीं तप है, वहीं शान्ति का निवास है। मैं स्वयं भी सदा वहीं निवास करता हूँ॥८१॥ हे पार्वति! तीर्थयात्रा के लिये इनको कहीं अन्यत्र नहीं जाना पड़ता। लिंग के साथ अंग की समरसता चाहने वाला निराभार वीरशैव कैलाश आदि की अपेक्षा नहीं रखता॥८२॥ जिस स्थान पर अन्य देवताओं की पूजा होती है, उस स्थान को छोड़ देना चाहिये और उसी तरह से शिवभक्ति से रहित मनुष्यों का भी सहारा नहीं लेना चाहिये॥८३॥ दान को लेने वाला, दान देने वाला और देय वस्तु ये सब [८]शिवचिह्न (शिवलिंग, नन्दी आदि) से सुशोभित होने चाहिये। निराभार वीरशैव को शिवचिह्न से अंकित वस्तु ही ग्रहण करनी चाहिये। बाकी सब वस्तु उसके लिये चण्डाल की विष्ठा के समान त्याज्य हैं॥८४॥ निराभारी वीरशैव सारे संसार को शिवमय ही देखे कि यहाँ शिव के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। लिंग, अंग और इनका परस्पर संबन्ध— इन तीन पदार्थों का ज्ञान ही यहाँ मोक्ष का साधन माना गया है॥८५॥

इस तरह से लिंगांगसामरस्य को प्राप्त एकमात्र शिवयोगी को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिये सभी को सदा आदरपूर्वक शिवलिंग की आराधना करनी चाहिये॥८६॥

---

८. इसका विस्तार चन्द्रज्ञानागम क्रिया० के पंचाचारनिरूपक नवम पटल में देखा जा सकता है।

श्रीलिङ्गधारणं हित्वा यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।
सूर्याचन्द्रमसौ जन्तोरायुष्यक्षयकारकौ ॥८७॥
तस्माल्लिङ्गार्चनं कुर्यात् सर्वधर्मोत्तमोत्तमम्।
यावत्करणसामर्थ्यं जरा यावन्न संस्पृशेत्।
स्थिरत्वं मनसो यावत् तावत् कुर्याच्छिवार्चनम् ॥८८॥

रहस्यं गोप्यम्

इदं रहस्यं परमं सारात्सारतरं महत्।
न वक्तव्यमभक्ताय कृतघ्नाय च मायिने ॥८९॥
वक्तव्यं हि प्रयत्नेन श्रद्धाभक्तियुताय च।
सदाचारे व्रते चापि निरताय महेश्वरि ॥९०॥
इदं प्रोक्तं हि संक्षेपाद् वीरशैवं महोत्तमम्।
मोक्षैकफलदं देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥९१॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे शैववीरशैवभेदस्वरूप-
निरूपणं नाम सप्तमः पटलः ॥७॥

यदि कोई व्यक्ति शिवलिंग के धारण के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से मोक्षरूपी सिद्धि को पाना चाहता है, तो ऐसे जीव की आयु को सूर्य और चन्द्रमा व्यर्थ नष्ट कर देते हैं, अर्थात् शिवलिंग धारण के बिना मुक्ति कभी भी संभव नहीं है ॥८७॥ इसलिये शिवभक्त को चाहिये कि सभी धर्मों में बताये गये मुक्ति के उपायों में सर्वश्रेष्ठ इस लिंगार्चन को सविधि सम्पन्न करे। जब तक इन्द्रियाँ समर्थ हैं, जब तक वृद्धावस्था शरीर को जर्जर नहीं कर देती, जब तक मन स्थिर है, तब तक शिवभक्त को शिवलिंग की पूजा अवश्य करते रहना चाहिये ॥८८॥

यह अत्यन्त गोपनीय विषय है। समस्त शास्त्रों का उत्कृष्टतम निचोड़ है। जो व्यक्ति शिवभक्त नहीं है, कृतघ्न है और मायावी (छलकपट से भरा हुआ) है, उसे यह रहस्य कभी नहीं बताना चाहिये ॥८९॥ हे माहेश्वरि! जो शिव और गुरु के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति से सम्पन्न है, सदाचार के पालन में और शिवव्रत के अनुष्ठान में लगा हुआ है, उसे इस रहस्य को प्रयत्नपूर्वक बताना चाहिये ॥९०॥ हे देवि! इस प्रकार संक्षेप में मैंने इस सर्वोत्तम वीरशैव शास्त्र को संक्षेप में बताया है। यह एकमात्र मोक्ष को देने वाला है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहती हो ॥९१॥

इस तरह से श्री सूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह शैवों के और वीरशैवों के भेदों के
स्वरूप को बताने वाला सातवां पटल समाप्त हुआ ॥७॥



अष्टमः पटलः

देव्युवाच

भगवन् सर्वलोकेश करुणाकर शङ्कर।
शैवभेदस्वरूपं च वीरशैवं विशेषतः ॥१॥
तदाचारविशेषं च श्रुतं त्वत्कृपया विभो।
तत्र लिङ्गाङ्गसम्बन्धज्ञानं मोक्षैकसाधनम्।
इत्युक्तं भवता देव तज्ज्ञानमुपदिश्यताम् ॥२॥

शिव उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया देवि रहस्यमिदमुत्तमम्।
षट्स्थलात्मकमेतत्तु श्रूयतां सावधानतः ॥३॥

षड्विधलिङ्गानि

आदावाचारलिङ्गं स्यात् ततश्च गुरुलिङ्गकम्।
शिवलिङ्गं ततो ज्ञेयं चरलिङ्गमतः परम् ॥४॥
ततः प्रसादलिङ्गं स्यान्महालिङ्गमतः परम्।
एवं षड्विधलिङ्गानां स्वरूपं शृणु शाङ्करि ॥५॥

देवी का प्रश्न—

सभी लोकों के स्वामी, सब पर करुणा करने वाले हे शंकर भगवन्! आपने शैवों के भेदों का और विशेष कर वीरशैवों के भेदों का स्वरूप बताया है॥१॥ हे स्वामिन्! वीरशैवों के विशेष आचारों को भी मैंने आपकी कृपा से सुना है। वहाँ आपने कहा है कि लिंग और अंग के संबन्ध का ज्ञान ही एकमात्र मोक्ष का साधन है। हे देव! अब आप मुझे उसी ज्ञान का उपदेश कीजिये॥२॥

शिव का उत्तर—

हे देवि! तुमने ठीक प्रश्न किया है। इसमें गहरा रहस्य छिपा हुआ है। यह ज्ञान षट्स्थलात्मक है। इसको तुम सावधानी से सुनो॥३॥

इनमें पहला आचारलिंग, तब दूसरा गुरुलिंग, तीसरा शिवलिंग और चौथा चर(जंगम)लिंग के नाम से जाना जाता है॥४॥ पाँचवां प्रसादलिंग और इसके आगे छठा महालिंग है। इस तरह से ये छः प्रकार के लिंग हैं। हे शांकरि! अब तुम इनका स्वरूप सुनो॥५॥

त्रिविधमाचारलिङ्गम्

स्थलमाचारलिङ्गस्य त्रिविधं श्रूयतां क्रमात्।
सदाचारस्तु नियतो गणाचारस्तथापरः ॥६ ॥
सज्जनः शिवभक्तश्च येन मार्गेण सर्वदा।
तोष्यते च महादेवि सदाचारः स वै स्मृतः ॥७ ॥
यस्तु स्वकृतमाचारं न त्यजेच्च तदत्ययात्।
त्यजेदसून् महादेवि नियताचार ईरितः ॥८ ॥
गुरुलिङ्गादिविषये न श्राव्यं दूषणं यदि।
श्रुतं तान् शिक्षयामीति गणाचारः स हि स्मृतः ॥९ ॥

त्रिविधं गुरुलिङ्गम्

दीक्षा शिक्षाऽनुभावश्च गुरुलिङ्गं त्रिधा भवेत्।
कुण्डमण्डलहोमाद्या अध्वशुद्धिः कलात्मिका।
मन्त्रोपदेशसहिता या सा दीक्षेति कथ्यते ॥१०॥
दीयते लिङ्गसम्बन्धः क्षीयते कर्मसञ्चयः।
दीयते क्षीयते साक्षाद् यया दीक्षेति कथ्यते ॥११॥

इनमें से पहले आचारलिंग के तीन भेद हैं। उनको तुम क्रम से सुनो। इनमें से पहला सदाचार, दूसरा नियताचार और तीसरा गणाचार कहलाता है ॥६॥ हे महादेवि ! सज्जन शिवभक्त को जिस मार्ग के आचरण से सदा सन्तुष्ट रखा जाता है, उसे सदाचार कहते हैं ॥७॥ हे महादेवि ! जो व्यक्ति अपने द्वारा स्वीकृत आचार का कभी परित्याग नहीं करता और उसमें बाधा उत्पन्न होने पर जो अपने प्राणों का त्याग कर देता है, ऐसे आचार को नियताचार कहते हैं ॥८॥ गुरु, लिंग आदि के विषय में मैं किसी प्रकार की निन्दा नहीं सुनूँगा, यदि कोई सुनाता है, तो मैं उसे उचित शिक्षा दूँगा, इस तरह का संकल्प ही गणाचार कहलाता है ॥९॥

आचारलिंग के समान गुरुलिंग के भी तीन भेद हैं। इनके नाम दीक्षागुरु, शिक्षागुरु और अनुभावगुरु हैं। कुण्ड और मण्डल का निर्माण, होम, [1]षडध्वशुद्धि, शिवकला का शिष्य में आधान और मन्त्रोपदेश इन व्यापारों से विशिष्ट क्रिया को 'दीक्षा' कहते हैं ॥१०॥

---

१. षडध्वशुद्धि की प्रक्रिया की जानकारी के लिये प्रथम पटल की ५वीं टिप्पणी में निर्दिष्ट ग्रन्थ का दीक्षा प्रकरण देखिये।

गुरुलिङ्गचराख्यानां लिङ्गानामेकरूपकम्।
यद्ज्ञानं बोधितं सद्भिः सा शिक्षेति निगद्यते॥१२॥
संस्कारैः प्राक्तनैर्देवि स्वकीयसुकृतार्जितैः।
ज्ञानाधिक्यं भवेद् यत्तु स्वानुभावः स उच्यते॥१३॥

त्रिविधं शिवलिङ्गम्

शिवलिङ्गस्वरूपं ते वक्ष्यामि शृणु पार्वति।
इष्टलिङ्गं प्राणलिङ्गं भावलिङ्गमिति त्रिधा॥१४॥
दीक्षाविधानाद् गुरुणा यल्लिङ्गं दत्तमादरात्।
मन्त्रोपदेशसहितम् इष्टलिङ्गमुदाहृतम्॥१५॥
त्यक्तदेहेन्द्रियगुणः शिवार्पितनिजान्तरः।
शिव एव मनो लीनं प्राणलिङ्गं तदुच्यते॥१६॥

इष्टलिंग का संबन्ध दिलाने वाला और इस प्रकार संचित कर्मों का क्षय करने वाला संस्कार ही दीक्षा है। दीयते और क्षीयते (दा और क्षि) इन दो धातुओं के साक्षात् योग से [२]दीक्षा शब्द निष्पन्न होता है। इस प्रकार के दीक्षा संस्कार को देने वाला दीक्षागुरु कहलाता है॥११॥ गुरु, लिंग और जंगम एक ही रूप हैं, इस प्रकार सद्गुरु के द्वारा उपदिष्ट ज्ञान को 'शिक्षा' कहा जाता है। इस शिक्षा को देने वाला शिक्षागुरु कहलाता है॥१२॥ हे देवि! अपने पुराने संस्कारों, पुण्य के प्रभाव से अर्जित किसी व्यक्ति में जो ज्ञान की अधिकता देखने में आती है, उसी को 'अनुभाव' कहते हैं। इस अनुभाव को ही, अपने ज्ञान को ही अनुभावगुरु कहते हैं॥१३॥

हे पार्वति! अब मैं शिवलिंग के स्वरूप को तुम्हे बताऊँगा। यह शिवलिंग भी इष्टलिंग, प्राणलिंग और भावलिंग के भेद से तीन प्रकार का है॥१४॥ दीक्षाविधान के साथ गुरु ने मन्त्र का उपदेश कर आदरपूर्वक जो लिंग दिया है, उसे ही इष्टलिंग कहते हैं॥१५॥ देह और इन्द्रिय के गुणों से जो विरक्त हो गया है, अपने अन्तःकरण को भी जिसने शिव को अर्पित कर दिया है, जिसका मन शिव में लीन हो गया है, ऐसे व्यक्ति के हृदय में विस्फुरित होने वाला चिद्रूप लिंग ही प्राणलिंग कहलाता है॥१६॥ जाग्रत्, स्वप्न आदि सभी अवस्थाओं में जिसका मन ज्योतिर्लिंग से

---

२. सिद्धान्तशिखामणि में दीक्षा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—
दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः॥ (६।११)

जाग्रदादिष्ववस्थासु ज्योतिर्लिङ्गैक्यमानसम्।
अज्ञानविनिवृत्तं च भावलिङ्गं तदुच्यते॥१७॥

त्रिविधं चरलिङ्गम्

चरलिङ्गस्थलस्यास्य स्वरूपं कथयामि ते।
स्वयं चरं परं चेति त्रैविध्यं समुपागतम्॥१८॥
लिङ्गलाञ्छनसंयुक्तं बाह्यकर्मविवर्जितम्।
केवलानन्दरूपं यत्तत् स्वयलिङ्गमीरितम्॥१९॥
स्वच्छन्दचारी स्वाभिन्नलिङ्गरूपो निराकुलः।
भेदभ्रान्तिविहीनो यश्चरलिङ्गं स उच्यते॥२०॥
निर्द्वन्द्वो हि सदा स्थाणुर्गमागमविवर्जितः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपोऽयं परलिङ्गमुदाहृतम्॥२१॥

त्रिविधं प्रसादलिङ्गम्

प्रसादलिङ्गत्रैविध्यमपि शृणु वरानने।
शुद्धं सिद्धं प्रसिद्धं च भेदश्चैषामथोच्यते॥२२॥

एकाकार हो गया है और जिसका अज्ञान निवृत्त हो गया है, ऐसे व्यक्ति के भाव में विस्फुरित होने वाला आनन्दरूप लिंग ही भावलिंग कहलाता है॥१७॥

अब मैं चर(जंगम)लिंग का स्वरूप तुम्हें बताऊँगा। यह स्वयजंगम, चरजंगम और परजंगम के भेद से तीन प्रकार का होता है॥१८॥ बाह्य शरीर पर इष्टलिंग धारण करके इष्टलिंग की पूजा से भिन्न बाह्य कर्मकाण्ड को जो नहीं करता और जो केवल आनन्द स्वरूप है, उसे स्वयलिंग, अर्थात् स्वयजंगम कहते हैं॥१९॥ जो स्वच्छन्द विचरण करने वाला है, लिंग के स्वरूप से जो अपने को अभिन्न मानता है, जो किसी भी परिस्थिति में कभी घबराता नहीं है और जो सभी प्रकार के भेदों की भ्रान्ति से रहित है, उसे चरलिंग, अर्थात् चरजंगम कहते हैं॥२०॥ जो राग-द्वेष, सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से रहित है, सदा स्थाणु, अर्थात् स्थिर मन वाला है, जननमरण रूपी गमनागमन से जो मुक्त है, अर्थात् जीवन्मुक्तावस्था में पहुंच गया है और ज्योतिर्लिंगस्वरूप हो गया है, उसे परलिंग, अर्थात् परजंगम कहते हैं॥२१॥

हे वरानने! अब तुम त्रिविध प्रसादलिंग के विषय में भी सुनो। शुद्धप्रसाद, सिद्धप्रसाद और प्रसिद्धप्रसाद के भेद से यह तीन प्रकार का होता है। अब मैं इनके लक्षण बताता हूँ॥२२॥ अपने पहले के प्राकृतिक गुणों से रहित, काम-क्रोध आदि दुष्प्रवृत्तियों

पूर्वसर्वगुणत्याग: कामक्रोधादिवर्जनम्।
गुरुभक्तप्रसादो य: स शुद्ध: परिकीर्तित: ॥२३॥
ज्ञात्वा लिङ्गत्रयं सम्यक् तदैक्यं च वरानने।
लिङ्गार्पितप्रसादोऽयं सिद्ध इत्यभिधीयते ॥२४॥
शिवोऽहम्भावनायुक्तो निश्चलीकृतमानस:।
चरार्पितप्रसादोऽयं प्रसिद्ध: परिकीर्तित: ॥२५॥

त्रिविधं महालिङ्गम्

महालिङ्गस्थलं चापि त्रिधा भिन्नं शृणु क्रमात्।
पिण्डजं प्रथमं प्रोक्तमण्डजं च तत: परम्।
बिन्द्वाकाशं ततो ज्ञेयमेषां लक्षणमुच्यते ॥२६॥
देहो देवालय: प्रोक्तो जीवो देव: सदाशिव:।
इति निश्चितसद्भाव: पिण्डजं लिङ्गमुच्यते ॥२७॥
पीठिका पृथिवी लिङ्गमाकाश: सृष्टिकारणम्।
निस्सन्देहमिदं ज्ञानमण्डजं लिङ्गमीरितम् ॥२८॥

को दूर करने वाले गुरुभक्त को अपने गुरु द्वारा प्राप्त होने वाला जो प्रसाद है, उसे शुद्धप्रसाद कहते हैं ॥२३॥ हे वरानने! इष्ट, प्राण और भाव नामक त्रिविध लिंगों को और इनकी एकता को भलीभाँति जान कर उस लिंग को अर्पित प्रसाद सिद्धप्रसाद कहलाता है ॥२४॥ मैं साक्षात् शिव ही हूँ, ऐसी भावना को भर देने वाला, शिवभक्त के मन को स्थिर कर देने वाला और जंगम को अर्पित प्रसाद ही प्रसिद्धप्रसाद कहलाता है ॥२५॥

महालिंग स्थल के भी तीन भेद हैं। उनको तुम क्रम से सुनो। प्रथम भेद पिण्डज-महालिंग, दूसरा अण्डज-महालिंग और तीसरा बिन्दुज-महालिंग के नाम से जाना जाता है। अब तुम इनके लक्षण सुनो ॥२६॥ यह मनुष्य का देह [३]देवालय है। इसमें सदाशिव देव का निवास है, इस तरह का भाव जिस जीवात्मा के मन में आ गया है, उसे पिण्डज-महालिंग कहते हैं ॥२७॥ पृथिवी पीठिका है और लिंग आकाश है। इन दोनों से सारे ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस प्रकार यह सारा ब्रह्माण्ड ही अण्डज-महालिंग कहलाता है ॥२८॥ आत्मा (पिण्ड) का आकाश

---

३. आगम-तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में और सिद्धों एवं नाथों के साहित्य में देह को देवालय माना गया है। तन्त्रालोककार अभिनव गुप्त का कहना है कि इस सिद्धान्त का प्रतिपादन लकुलीश पाशुपत मत के आद्य प्रवक्ता लकुलीश ने किया था — "सर्वदेवमय: काय:" (तन्त्रा० १५।६०४)।

ध्यात्वात्मानमथाकाशे ध्यात्वाकाशं तथात्मनि।
आत्माकाशमयं लिङ्गं बिन्द्वाकाशमुदाहृतम्॥२९॥

देव्युवाच

एषु लिङ्गेषु देवेश कथं पूजादिकं भवेत्।
समाचारस्तु को वात्र प्रसादः कीदृशो भवेत्।
एतत्सर्वं समासेन कृपया वद मे प्रभो॥३०॥

शिव उवाच

अङ्गस्थलं समासेन वक्ष्ये षड्विधमादितः।
यस्मिन् ज्ञाते महादेवि ज्ञायते चाधिकं ततः॥३१॥

सलक्षणानि षट्स्थलानि

भक्तो माहेश्वरश्चैव प्रसादी प्राणलिङ्गकः।
शरणः शिवलिङ्गैक्यः षट्स्थलानि हि पार्वति॥३२॥
अथैषां लक्षणं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहिता।
त्यक्ताभिमानो देहादौ भक्त इत्युच्यते बुधैः॥३३॥

(ब्रह्माण्ड) में और आकाश (ब्रह्माण्ड) का आत्मा (पिण्ड) में परस्पर अभिन्न रूप से ध्यान करने से परिज्ञात आत्माकाशमय लिंग ही बिन्दुज-महालिंग, अर्थात् बिन्द्वाकाश कहलाता है॥२९॥

देवी का प्रश्न—

हे देवेश! इन लिंगों की पूजा कैसे होगी? किन उपचारों से यह पूजा होगी? लिंगपूजा से मिलने वाला प्रसाद कैसा होगा? हे प्रभो! यह सब संक्षेप में आप कृपा करके बताइये॥३०॥

शिव का उत्तर—

हे महादेवि! इन प्रश्नों का उत्तर देने से पहले मैं तुमको संक्षेप में अंगस्थल का निरूपण करता हूँ, जिसके कि ज्ञान से सब कुछ समझ में आ जाता है॥३१॥

हे पार्वति! भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य— ये छः स्थल होते हैं॥३२॥ अब मैं इनके लक्षण बताऊँगा। तुम सावधान होकर सुनो। जिसने देह, इन्द्रिय आदि में आत्मत्व का अभिमान छोड़ दिया है, उसे विद्वद्गण भक्त कहते हैं॥३३॥ जिसका चित्त मन्त्रजप से राग, द्वेष आदि दोषों से मुक्त

तच्चित्तममलं यस्य स वै माहेश्वरः स्मृतः।
चित्तं स्थिरं भवेद् यस्य स प्रसादी भवत्यसौ॥३४॥
त्यक्त्वा जीवभ्रमं भूयो लिङ्गात्मा प्राणलिङ्गकः।
शिवनित्यत्वनिश्चिन्तः सानन्दः शरणो भवेत्।
शिवजीवोभयभ्रान्तिरहितश्चैक्य उच्यते॥३५॥

त्रिविधो भक्तः

गुरुभक्तो लिङ्गभक्तश्चरभक्तस्तथैव च।
एवं भेदसमायुक्तो भक्तस्तु त्रिविधो भवेत्॥३६॥

षड्विध आचारलिङ्गभक्तः

मोही भक्तः पूजकश्च तथा वीरः प्रसादवान्।
प्राणी चाचारलिङ्गादिः स वै भक्तोऽपि षड्विधः॥३७॥
मोहं त्यजेत् कलत्रादौ मोही ह्याचार एव हि।
शिवाचारविरुद्धांश्च त्यजेदपि सुतादिकान्।
स एवाचारमोही स्यादन्याचारविवर्जितः॥३८॥
पूर्वाचारं परित्यज्य शिवाचारं समाश्रितः।
आचारलिङ्गभक्तः स्याद् विरुद्धाचारवर्जितः॥३९॥

गया है, उसे माहेश्वर कहते हैं। जिसका चित्त निर्मल हो गया है, उसे प्रसादी कहा जाता है॥३४॥ जो साधक अपने में जीवभाव के भ्रम को छोड़कर लिंगस्वरूप हो जाता है, उसे प्राणलिंगी कहते हैं। शिवभाव की नित्यता पर विश्वास कर जो निश्चिन्त और आनन्द से ओतप्रोत रहता है, उसे शरण कहते हैं। शिव और जीवविषयक सभी भ्रान्तियों से निर्मुक्त व्यक्ति ऐक्य कहलाता है॥३५॥

गुरुभक्त, लिंगभक्त और चर(जंगम)भक्त— इन तरह के भेदों के कारण भक्तस्थल तीन प्रकार का होता है॥३६॥

आचारलिंग, गुरुलिंग आदि षड्विध लिंगों में से प्रत्येक के भेद से मोही, भक्त, पूजक, वीर, प्रसादवान् और प्राणी— ये छः प्रकार के भक्त होते हैं॥३७॥ स्त्री-पुत्र आदि के प्रति जो मोह को छोड़ देता है, शिवाचार के विरुद्ध आचरण करने वाले पुत्र आदि को भी जो छोड़ देता है और इसी प्रकार के अन्य सभी विपरीत आचारों का भी जो परित्याग पर देता है, ऐसा भक्त आचारलिंग का 'मोही' कहलाता है॥३८॥ पूर्व के आचारों को छोड़कर जिसने शिवाचार को ग्रहण कर लिया है, ऐसा विरुद्धाचार को छोड़ देने वाला भक्त आचारलिंग का 'भक्त' कहलाता है॥३९॥ अन्य सभी

अन्यपूजां परित्यज्य लिङ्गपूजैकतत्परः।
शिवाचारपरो यस्तु स स्यादाचारपूजकः॥४०॥
अपि प्राणात्यये देवि स्वाचारं न परित्यजेत्।
आचारलिङ्गवीरः स्यादाचारैकपरायणः॥४१॥
शुचित्वमशुचित्वं चेत्यादिसन्देहवर्जितः।
ग्राह्याग्राह्यादिरहितः स्यादाचारप्रसादकः॥४२॥
परैः कृतामीशनिन्दां शृणुयान्न च कुत्रचित्।
इति योऽस्ति स आचारलिङ्गप्राणीति कथ्यते॥४३॥
एवमाचारलिङ्गैकतत्परो मां समाश्रयेत्।
प्रतिपद्य स नित्यत्वं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥४४॥

षड्विधो गुरुलिङ्गभक्तः

एवं च गुरुलिङ्गेऽपि षड्भेदाः सम्भवन्ति हि।
त्यक्तपित्रादिमोहः सन् गुरुलिङ्गैकमोहवान्।
एवं यो वर्तते देवि गुरुमोही स उच्यते॥४५॥

देवताओं की पूजा को छोड़कर जो मात्र शिवलिंग की पूजा में ही रहता हुआ शिवाचार का पालन करता है, वह आचारलिंग का 'पूजक' कहलाता है॥४०॥ हे देवि! प्राण का संकट आने पर भी जो अपने आचार का परित्याग नहीं करता, ऐसा आचार के पालन में लगा हुआ साधक आचारलिंग का 'वीर' कहलाता है॥४१॥ पवित्रता और अपवित्रता इत्यादि के प्रति जिसके मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है और क्या ग्राह्य है, क्या ग्राह्य नहीं है? इस पर भी जो कोई भेददृष्टि नहीं रखता, ऐसा साधक आचारलिंग का 'प्रसादी' कहलाता है॥४२॥ दूसरों के द्वारा की गई ईश्वर की निन्दा को जो कभी भी नहीं सुनता, उस तरह का साधक आचारलिंग का 'प्राणी' कहलाता है॥४३॥ इस तरह से आचारलिंग की पूजा में जो सदा लगा रहता है, वह नित्य शिव पद को प्राप्तकर गाणपत्य पदवी को प्राप्त करता है॥४४॥

हे देवि! इसी तरह से गुरुलिंग के भी उक्त छः भेद होते हैं। माता-पिता आदि का मोह छोड़कर जो गुरुलिंग के प्रति ही मोह रखता है, उसे गुरुलिंग का 'मोही' कहा जाता है॥४५॥ हे महादेवि! लौकिक बान्धवों को छोड़कर जो एकमात्र गुरुलिंग

लौकिकान् बान्धवान् त्यक्त्वा गुरुलिङ्गैकबान्धव:।
हर्षपूर्णो महादेवि गुरुभक्त इति स्मृत:॥४६॥
पूजामन्यां परित्यज्य गुरुलिङ्गैकपूजक:।
इति निष्ठापरो यस्तु गुरुपूजक उच्यते॥४७॥
गुरूपदिष्टमेवाथ समाचरणमाचरन्।
यश्च त्यक्तेतराचारो गुरुवीर: स उच्यते॥४८॥
यो वै न लङ्घयेद् देवि कदाचिद् गुरुशासनम्।
स वै गुरुप्रसादी स्यान्निवृत्तेतरशासन:॥४९॥
सेवामन्यां परित्यज्य गुरुलिङ्गैकसेवक:।
वर्तते य: सदा देवि गुरुप्राणी स हि स्मृत:॥५०॥
एवं भेदैश्च मां देवि गुरुमूर्तिधरं शिवम्।
भजतेऽनन्यचित्तो य: स मुक्त: स्यान्न संशय:॥५१॥

षड्विध: शिवलिङ्गभक्त:

शिवलिङ्गस्थलेऽप्येवं षड्विधं व्रतमाचरेत्।
शिवलिङ्गैकमोही स्यादन्यमोहविवर्जित:।
शिवलिङ्गैकभक्त: स्यादन्यभक्तिविवर्जित:॥५२॥

को ही अपना बन्धु मानता है, ऐसा आनन्द में निमग्न साधक गुरुलिंग का 'भक्त' कहलाता है॥४६॥ दूसरे देवताओं की पूजा को छोड़कर जो व्यक्ति गुरुलिंग की ही मात्र पूजा करता है और उसी में अपनी निष्ठा-भक्ति रखता है, वह गुरुलिंग का 'पूजक' कहलाता है॥४७॥ जो व्यक्ति गुरु के द्वारा उपदिष्ट सदाचार का पालन करता हुआ अन्य सभी आचारों का त्याग कर देता है, वह गुरुलिंग का 'वीर' कहलाता है॥४८॥ हे देवि! जो व्यक्ति गुरु के द्वारा उपदिष्ट शासन का कभी भी उल्लंघन नहीं करता, ऐसा सभी शासनों से निर्मुक्त भक्त या गुरुलिंग का 'प्रसादी' कहलाता है॥४९॥ हे देवि! अन्य सभी देवताओं की सेवा का परित्याग कर जो मात्र गुरुलिंग की सेवा में ही सदा लगा रहता है, वह गुरुलिंग का 'प्राणी' कहलाता है॥५०॥ हे देवि! इस तरह छ: प्रकार के गुरुमूर्ति-स्वरूप को धारण किये हुए शिव को जो भक्त अनन्यभाव से भजता है, वह अवश्य मुक्त हो जाता है। उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं मानना चाहिये॥५१॥

शिवलिंग में भी इन्हीं छ: व्रतों का पालन करना चाहिये। अन्य सभी प्रकार के मोह को छोड़ कर शिवलिंग में ही मोह रखने वाला शिवलिंगैक 'मोही' कहलाता है, अर्थात् यह एकमात्र शिवलिंग के प्रति ही मोह रखता है। अन्य देवताओं की भक्ति से रहित व्यक्ति शिवलिंगैक 'भक्त' कहलाता है, अर्थात् यह केवल शिवलिंग की ही भक्ति करता है॥५२॥ अन्य देवताओं की पूजा को छोड़ कर एकमात्र शिवलिंग की

अनन्यदेवपूज: स्याच्छिवलिङ्गैकपूजक:।
शिवलिङ्गैकवीर: स्यात् पुण्यक्षेत्रादिनिस्पृह:।।५३।।
शिवलिङ्गप्रसादी स्यात् सुखदु:खविवर्जित:।
य: सदा शिवलिङ्गैकप्राणी स्त्रीभोगवर्जित:।।५४।।
एवं भेदेन मां देवि पूजयेल्लिङ्गरूपिणम्।
गाणपत्यं भवेत् तस्य दुर्लभं प्राकृतात्मनाम्।।५५।।

षड्विधश्चरलिङ्गभक्त:

चरलिङ्गस्थलेऽप्येवं भक्तस्याचरणं शृणु।
चरलिङ्गमेव सर्वस्वमिति संभावयन् हृदि।
चरलिङ्गैकमोही स्यादन्यमोहविवर्जित:।।५६।।
त्यक्त्वाऽभिमानं देहादौ जङ्गमैकाभिमानवान्।
चरलिङ्गैकभक्त: स्यादन्यभक्तिविवर्जित:।।५७।।
अन्यपूजां परित्यज्य चरलिङ्गं प्रपूजयेत्।
अयं च चरलिङ्गस्य पूजको नान्यपूजक:।।५८।।

पूजा करने वाला शिवलिंगैक 'पूजक' कहलाता है और इसी तरह से पुण्यक्षेत्र आदि की यात्रा का मोह छोड़ देने वाला शिवलिंगैक 'वीर' कहलाता है।।५३।। सदा सुख-दु:ख से परे रहने वाला साधक और स्त्रीप्रसंग से सदा दूर रहने वाला शिवलिंगैक 'प्राणी' कहलाता है।।५४।। हे देवि! इस प्रकार जो साधक छ: भेदों वाले शिवलिंग-स्वरूप को धारण किये हुए मेरे स्वरूप की पूजा करता है, उन्हें प्राकृत मनुष्यों के लिये दुर्लभ गाणपत्य पद की प्राप्ति होती है।।५५।।

हे देवि! अब तुम चर(जंगम)लिंग के भक्तों के आचार को सुनो। अन्य सभी प्रकार के मोह को छोड़ कर जो साधक अपने हृदय में चर(जंगम)लिंग के प्रति ही विशेष आदरभाव दिखलाता है, वह चरलिंग 'मोही' कहलाता है।।५६।। देह, इन्द्रिय आदि के प्रति आत्माभिमान को छोड़कर जो भक्त मात्र जंगम के प्रति अपनत्व दिखलाता है, ऐसा अन्य किसी के भी प्रति भक्ति न रखने वाला चरलिंग 'भक्त' कहलाता है।।५७।। अन्य सभी देवताओं की पूजा को छोड़कर जो साधक मात्र चर(जंगम)लिंग की पूजा करता है, ऐसा अन्य किसी की पूजा न करने वाला यह चर(जंगम)लिंग 'पूजक' कहलाता है।।५८।। अपने धन, प्राण इत्यादि सबको जो

अर्थप्राणादिकं सर्वं प्रीत्या कुर्याच्चरार्पितम्।
चरलिङ्गैकवीर: स्यात् पुन: स्वप्नेऽपि न स्मरेत्॥५९॥
सर्वं चरार्पितं कृत्वा तत्प्रसादं विशेषत:।
यो भुङ्क्ते चरलिङ्गस्य प्रसादी नान्यलोलुप:॥६०॥
शिवरूपान् चरान् पूज्यान् प्राणवत् परिभावयन्।
अयं च चरलिङ्गैकप्राणी स्यान्नान्यमानस:॥६१॥
एवं मद्रूपतापन्नं चरलिङ्गं समर्चयेत्।
गणत्वं प्राप्य सुचिरं मोदते सुखलीलया॥६२॥

षड्विध: प्रसादलिङ्गभक्त:

एवं प्रसादलिङ्गस्य स्थलं च शृणु तत्त्वत:।
अन्यद्रव्यरुचिं त्यक्त्वा पूर्वपूजादिवर्जित:।
प्रसादलिङ्गमोही स्यादन्यमोहविवर्जित:॥६३॥
प्रसादलिङ्गभक्तस्तु पूर्वाहारनिरासक:।
प्रसादपूजको देवि परमैत्र्यादिवर्जित:॥६४॥

प्रीतिपूर्वक जंगम को समर्पित कर देता है और फिर उसका स्वप्न में भी स्मरण नहीं करता, उस साधक को चरलिंग 'वीर' कहा जाता है॥५९॥ सब कुछ जंगम को समर्पित पर देने के बाद जो विशेष रूप से उस जंगम के प्रसाद का ही उपभोग करता है, अन्य किसी वस्तु में जो लालायित नहीं है, ऐसा साधक ही चरलिंग 'प्रसादी' कहलाता है॥६०॥ शिवस्वरूप, सर्वत्र पूजनीय जंगमों को जो साधक अपने प्राणों के समान मानकर उनकी सेवा करता है, अन्य किसी के प्रति अपने मन में स्थान नहीं बनाता, वह चर(जंगम)लिंग 'प्राणी' कहलाता है॥६१॥ इस प्रकार से जो साधक शिवस्वरूप को प्राप्त हुए चरलिंग की पूजा करता है, वह गाणपत्य पद को प्राप्त कर सुदीर्घ काल तक शिवलीला के सुख का उपभोग करता रहता है॥६२॥

इसी तरह से अब तुम प्रसादलिंग के भक्तों के छ: भेदों को सुनो। अन्य सभी प्रकार के द्रव्यों के प्रति रुचि को त्याग कर और जिन देवताओं की उपासना पूर्व में की जा रही थी, उन्हें भी छोड़ कर जो व्यक्ति अन्य सभी प्रकार के मोह को छोड़ चुका है, उसे प्रसादलिंग 'मोही' कहते हैं॥६३॥ हे देवि! प्रसादलिंग 'भक्त' वह है, जो व्यक्ति लिंग की पूजा करने से पहले आहार ग्रहण नहीं करता। पूजा कर लेने के उपरान्त ही जो प्रसाद ग्रहण करता है और दूसरों के प्रति राग, द्वेष आदि नहीं रखता, वह प्रसादलिंग 'पूजक' है॥६४॥ जो अपने हाथ से दूसरों के धन का

करेण परवित्तं तु कदापि नहि संस्पृशेत्।
स तु प्रसादलिङ्गैकवीरः स्यान्निस्पृहः सदा॥६५॥
आदानार्थं च दानार्थं करं नैव प्रसारयेत्।
नान्यत् किञ्चित्प्रसादस्य प्रसादी क्वापि संस्पृशेत्॥६६॥
न कुर्याज्जीवहिंसां च परैर्वा नापि कारयेत्।
प्रसादलिङ्गप्राणी स्यात् स भवेदात्मबोधकः॥६७॥
इत्थं प्रसादलिङ्गैकपरो भूतदयान्वितः।
यः पूजयति मां देवि मत्सायुज्यमवाप्नुयात्॥६८॥

षड्विधो महालिङ्गभक्तः

महालिङ्गस्थलेऽप्येवं भेदः संकथ्यतेऽधुना।
त्यक्तलोकसमाचारो लिङ्गनिष्ठैकमानसः।
स महालिङ्गमोही स्यादन्यमोहविवर्जितः॥६९॥
पूर्वभक्तस्थलं त्यक्त्वा पूर्वकर्मादि वर्जयेत्।
स महालिङ्गभक्तः स्यादन्यभक्तिविवर्जितः॥७०॥

कदापि स्पर्श नहीं करता और सदा निस्पृह रहता है, वह प्रसादलिंग 'वीर' कहलाता है॥६५॥ किसी वस्तु का दान ग्रहण करने के लिये अथवा दान देने के लिये जो कभी अपने हाथ नहीं पसारता, केवल शिवप्रसाद के ग्रहण के लिये ही जो हाथ फैलाता है, वह प्रसादलिंग 'प्रसादी' कहलाता है॥६६॥ जो स्वयं जीवहिंसा नहीं करता और न दूसरों से करवाता है, ऐसा आत्मा के स्वरूप को जानने वाला साधक प्रसादलिंग 'प्राणी' कहलाता है॥६७॥ हे देवि! इस तरह से एकमात्र प्रसादलिंग का उपासक जो शिवभक्त सभी प्राणियों पर दयाभाव रखता हुआ मेरी उपासना करता है, वह मेरी सायुज्य पदवी को प्राप्त करता है॥६८॥

अब मैं उपर बताई गई पद्धति से ही महालिंग के भक्तों के छः भेदों का स्वरूप भी बताता हूँ। लोक-व्यवहार को छोड़कर जिसका मन मात्र महालिंग की पूजा में ही रम गया है, उसे महालिंग 'मोही' कहते हैं, क्योंकि उसने अन्य सबके प्रति मोह का परित्याग कर दिया है॥६९॥ पूर्व में की गई भक्ति को और पूर्व में किये गये विविध अनुष्ठानों को भी छोड़ कर अन्य सभी देवताओं की भक्ति से रहित व्यक्ति महालिंग 'भक्त' कहलाता है॥७०॥ जो व्यक्ति अज्ञानी मनुष्यों के सम्पर्क

त्यजेत् संसर्गमज्ञानां त्यजेद् वै भाषणादिकम्।
शुद्धसत्त्वाश्रयो यस्तु स महालिङ्गपूजक:॥७१॥
सृष्टिस्थितिलयाद्यं हि जीवकृत्यं न च स्मरेत्।
स महालिङ्गवीर: स्यान्नान्यचित्तसमाश्रय:॥७२॥
पूर्वकर्मादिकान् सर्वानन्तर्लिङ्गे निवेदयेत्।
महालिङ्गप्रसादी स्यात् पङ्क्तिभोजनवर्जित:॥७३॥
बाह्यार्चनादि सन्त्यज्य भवेदान्तरपूजक:।
आत्मार्पको महालिङ्गप्राणी भवति पार्वति॥७४॥
महालिङ्गस्थले त्वेवं मानसैरुपचारकै:।
अर्चयेद् यस्तु मां नित्यं मत्सायुज्यमवाप्नुयात्॥७५॥

आहत्य ३६ लिङ्गस्थलानि

एवं लिङ्गस्थलं देवि तदङ्गस्थलयोगत:।
एकैकं षड्विधं प्रोक्तं तेन षट्त्रिंशतां गतम्।
पूर्वपूजासमायोगाद् उत्तरोत्तरमाश्रयेत् ॥७६॥

को छोड़ देता है, उनसे भाषण आदि भी नहीं करता, केवल शुद्ध प्रकृति के मनुष्यों से ही सम्पर्क रखता है, वह महालिंग 'पूजक' कहलाता है॥७१॥ सृष्टि, स्थिति, लय आदि सारे कार्य जीवभाव से संबद्ध हैं, अर्थात् इनका संबन्ध केवल अज्ञानी मलावृत जीवों से ही है, शिवभाव में प्रतिष्ठित साधक इनका कभी स्मरण नहीं करता और न शिव के सिवाय अन्य किसी देवता की शरण में ही जाता है, ऐसा साधक महालिंग 'वीर' कहलाता है॥७२॥ अपने पूर्वकृत सभी कर्मों को जो साधक अपने अन्तर्लिंग को समर्पित कर देता है और जो पंक्ति में बैठ कर भोजन नहीं करता, उसे महालिंग 'प्रसादी' कहते हैं॥७३॥ हे पार्वति! देवताओं की बाह्य पत्र, पुष्प आदि से की जाने वाली पूजा को छोड़ कर जो साधक आन्तर भावपुष्प आदि से महालिंग की पूजा करके उसे अपनी आत्मा को भी समर्पित कर देता है, वह महालिंग 'प्राणी' कहलाता है॥७४॥ इस तरह से महालिंग स्थल में मानस उपचारों से जो साधक मेरी नित्य पूजा करता है, वह शिवसायुज्य को प्राप्त करता है॥७५॥

हे देवि! इस प्रकार एक एक लिंगस्थल अंगस्थल के योग से छ: छ: प्रकार का होकर कुल [४]छत्तीस भेद वाला हो जाता है। पहले की पूजा कर लेने के बाद क्रमश: आगे-आगे बढना चाहिये॥७६॥

---

४. अभी हाल में मैसूर से प्रकाशित सिद्धान्तशिखामणि के टीकाकार मरितोंटदार्य के सटिप्पण कैवल्यसार नामक ग्रन्थ में इनका विस्तार से सुन्दर विवेचन मिलता है।

अङ्गेषु लिङ्गस्थिति:

तस्मादेकं परं लिङ्गं नामरूपक्रियात्मना।
संस्थितं ज्ञानकर्मभ्यामङ्गेऽस्मिन् षट्स्थलात्मके ॥७७॥
इष्टलिङ्गं तु बाह्याङ्गे प्राणलिङ्गं तथाऽऽन्तरे।
आत्मनिष्ठं भावलिङ्गमेवं ज्ञेयं नगात्मजे ॥७८॥
आचारो नासिकाङ्गे स्याज्जिह्वाङ्गे गुरुलिङ्गकम्।
दृगङ्गे शिवलिङ्गं स्यात् त्वगङ्गे चरलिङ्गकम् ॥७९॥
प्रसादलिङ्गं श्रोत्राङ्गे महालिङ्गं हृदि स्थितम्।
एवं कर्मेन्द्रियाङ्गेषु लिङ्गयोगो विधीयते ॥८०॥
आचारलिङ्गं तत्रोक्तं शिवलाञ्छनसंयुतम्।
आचारलिङ्गसम्बन्धि गुरुलिङ्गमुदाहृतम् ॥८१॥
गुरुलिङ्गोपदिष्टं यच्छिवलिङ्गं तदीरितम्।
शिवलिङ्गमुखं यत्तत् चरलिङ्गमुदाहृतम् ॥८२॥

इस तरह से एक ही परलिंग नाम, रूप और क्रिया के भेद से तथा ज्ञान और कर्म के भेद से अंग में भी षट्स्थल के रूप में विराजमान है॥७७॥ हे नगात्मजे (हिमालयपुत्रि)! बाह्य अंग में इष्टलिंग, आन्तर अंग में प्राणलिंग और आत्मा में भावलिंग की स्थिति जाननी चाहिये॥७८॥ नासिका अंग में आचारलिंग, जिह्वा अंग में गुरुलिंग, नेत्र इन्द्रिय में शिवलिंग, स्पर्शन इन्द्रिय में चर(जंगम)लिंग की स्थिति समझनी चाहिये॥७९॥ श्रोत्र इन्द्रिय में प्रसादलिंग और हृदय में महालिंग की स्थिति मानी जाती है। इसी तरह से अंग की पांच [५]कर्मेन्द्रियों में भी पाँच लिंगों का संबन्ध किया जाता है॥८०॥ जैसे कि उपस्थ में आचारलिंग, पायु में गुरुलिंग, पाद में शिवलिंग, पाणि में चर(जंगम)लिंग और वाक् में प्रसादलिंग की स्थिति मानी जायगी। भस्म, रुद्राक्ष आदि शिवचिह्नों को अपने शरीर पर धारण करने वाला साधक आचारलिंग का उपासक माना जाता है। इन आचारों का उपदेश करने वाला गुरुलिंग है॥८१॥ उस गुरुलिंग के उपदेश से प्राप्त होने वाला लिंग ही शिवलिंग है। उस शिवलिंग का मुख ही जंगमलिंग है॥८२॥

---

५. यह विषय अनुभवसूत्र (६।५-११) में अधिक स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है।

चरलिङ्गोपलब्धं यत् तत्प्रसादाख्यलिङ्गकम्।
प्रसादानुग्राहकं स्यान्महालिङ्गमिति क्रमात्॥८३॥

लिङ्गाङ्गसम्बन्ध:

आचारलिङ्गमुख्यानां सम्बन्धं चोत्तरोत्तरम्।
ज्ञात्वा लिङ्गाङ्गयोरर्थं तत्सम्बन्धं च पार्वति।
गुरूक्तेनैव मार्गेण जानीयात् सूक्ष्मभावत:॥८४॥
एवं लिङ्गाङ्गसम्बन्धज्ञानं गोप्यं सुदुर्लभम्।
उपदिष्टं तव प्रीत्या मोक्षमार्गैकसाधनम्॥८५॥
इति लब्ध्वा परं ज्ञानं गुरुकारुण्यत: प्रिये।
वीरशैवपरो भूत्वा यजेन्मां लिङ्गरूपिणम्॥८६॥
स एव सर्वतत्त्वज्ञो ज्ञेय: सर्वोत्तमोत्तम:।
तस्य दर्शनमात्रेण मुक्तो भवति मानव:॥८७॥
एवमुक्तं शिवज्ञानं वीरशैवप्रबोधकम्।
तस्मादेतन्न वक्तव्यं यस्मै कस्मै वरानने।
वक्तव्यं हि प्रयत्नेन भक्ताय प्राणलिङ्गिने॥८८॥

उस जंगमलिंग से प्राप्त प्रसाद को प्रसादलिंग कहते हैं और उस प्रसादलिंग को अनुगृहीत करने वाला लिंग ही महालिंग है॥८३॥

हे पार्वति! आचार आदि सभी षड्विध लिंगों के आपस में एक दूसरे के उत्तरोत्तर संबन्ध को जान कर, लिंग और अंग के अर्थ को और इनके परस्पर संबन्ध को भी गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से सूक्ष्म रूप में भलीभाँति जानना चाहिये॥८४॥ इस तरह से परम गोप्य सुदुर्लभ लिंग और अंग के इस परस्पर के संबन्ध के ज्ञान को मैंने यहाँ तुम्हारे प्रति प्रीति के कारण बताया है। यह मोक्ष की तरफ बढने का एकमात्र साधन है॥८५॥ हे प्रिये! गुरु की कृपा से इस परम दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त कर वीरशैव मत में प्रतिपादित आचारों का भलीभाँति पालन करते हुए लिंगरूपधारी शिव का सदा यजन करना चाहिये॥८६॥ ऐसा करने वाला शिवभक्त ही सभी तत्त्वों को भलीभाँति जान सकता है। उसे सभी तत्त्वज्ञों में उत्तम से उत्तम मानना चाहिये। ऐसे शिवभक्त के दर्शनमात्र से कोई भी मनुष्य मुक्तिलाभ कर सकता है॥८७॥ हे वरानने! इस तरह से मैंने वीरशैव भाव को प्रबुद्ध करने वाले इस शिवज्ञान का तुम्हें उपदेश किया है। जिस किसी को बिना परीक्षा किये इस शिवज्ञान का उपदेश नहीं करना चाहिये।

इतोऽधिकतरं ज्ञानं नास्ति सर्वार्थसाधनम्।
प्रोक्तमेवं तव प्रीत्या किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥८९॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे लिङ्गाङ्गस्थलस्वरूपनिरूपणं
नामाष्टमः पटलः ॥८॥

केवल प्राणलिंगी भक्त को ही इसका प्रयत्नपूर्वक उपदेश करना चाहिये ॥८८॥ इससे बढकर दूसरा कोई ऐसा ज्ञान नहीं है, जो कि मनुष्य के सभी प्रयोजनों को सिद्ध कर सकता हो। तुम्हारे ऊपर प्रीति के कारण यह सब मैंने कहा है। अब आगे पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो ॥८९॥

इस प्रकार श्री सूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह लिंगांगस्थलों के स्वरूप का
निरूपण करने वाला आठवाँ पटल समाप्त हुआ ॥८॥



नवमः पटलः

देव्युवाच

भगवन् परमेशान सर्वानुग्रहतत्पर।
लिङ्गाङ्गस्थलसम्बन्धस्वरूपं हि श्रुतं मया॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि भक्तमाहात्म्यमुत्तमम्।
तत्स्वरूपं च मे स्वामिन् कृपया तद्वद प्रभो॥२॥

शिव उवाच

साधु पृष्टमिदं देवि सर्वलोकहितं परम्।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात्।
संक्षिप्यैतत् प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहिता॥३॥

भक्ताश्चतुर्विधाः

भक्ताश्चतुर्विधा लोके नानालक्षणसंयुताः।
कनिष्ठा मध्यमाश्चैवमुत्तमा उत्तमोत्तमाः।
प्रख्याता भुवने देवि तत्तदाचारभेदतः॥४॥
सिद्धविद्याधरादीनां लोकान् वै समुपाश्रिताः।
वसन्ति तत्र भक्तास्ते कनिष्ठा मदनुज्ञया॥५॥

देवी का प्रश्न—

हे सभी पर अनुग्रह करने में तत्पर परमेश्वर भगवान् शिव! मैंने आपसे लिंग और अंगस्थल के परस्पर संबन्ध के विषय में सुन लिया है॥१॥ हे स्वामिन्! अब मैं शिवभक्तों के उत्तम माहात्म्य को सुनना चाहती हूँ। हे प्रभो! कृपा कर आप उसके स्वरूप को मुझे बताइये॥२॥

शिव का उत्तर—

हे देवि! यह तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। सभी प्राणियों के श्रेष्ठ हित की भावना इसमें छिपी हुई है। इसको जान कर जीव इस घोर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसका उत्तर मैं संक्षेप में ही दूँगा। उसे तुम सावधानी से सुनो॥३॥

हे देवि! नाना प्रकार के लक्षणों से संयुक्त भक्त इस लोक में चार प्रकार के माने गये हैं। वे उन उन आचारों के भेदों के अनुसार इस भुवन में कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम कहलाते हैं॥४॥ सिद्ध, विद्याधर आदि की उपासना करने वाले मेरी आज्ञा के अनुसार उन उन देवताओं के लोकों को प्राप्त कर वहाँ निवास करते हैं। ऐसे भक्त कनिष्ठ कोटि के माने जाते हैं॥५॥ हे देवि! मध्यम कोटि के भक्तों के तीन

भक्ताश्च मध्यमा देवि त्रिविधा लोकपूजिता:।
ते च राजर्षय: केचित् केचिद् ब्रह्मर्षय: परे॥६ ॥
अन्ये देवर्षय: प्रोक्ता: शापानुग्रहकारका:।
चरन्त्यखिललोकेषु मदाज्ञापरिपालका:॥७ ॥

उत्तमास्त्रिविधा:

उत्तमास्त्रिविधा: प्रोक्ता भक्ताश्च परमेश्वरि।
उत्तमाचारभेदात्तु तत्तद्योग्यपदे स्थिता:॥८ ॥
सालोक्यमास्थिता: केचित् सामीप्यं च तथा परे।
सारूप्यं चापरे प्राप्तास्तत्तद्भक्त्यनुसारत:।
मदाज्ञया पदेष्वेषु वसन्ति हि निराकुला:॥९ ॥

उत्तमोत्तमा भक्ता:

उत्तमोत्तमभक्तास्तेऽप्युत्तमोत्तमवृत्तय: ।
प्राप्नुयु: स्वेच्छया देवि पदमप्युत्तमोत्तमम्॥१०॥
ये वीरशैवनिरता: प्राणलिङ्गपरायणा:।
ये च धर्मैकनिरता भक्तास्ते चोत्तमोत्तमा:॥११॥
येन केनापि मार्गेण येन केन च कर्मणा।
शिवैकनिष्ठमनसो भक्तास्ते चोत्तमोत्तमा:॥१२॥

भेद होते हैं। ये सब लोकपूजित हैं। इनमें में कुछ राजर्षिगण, दूसरे ब्रह्मर्षिगण और तीसरे देवर्षिगण कहलाते हैं। ये सभी शाप देने और अनुग्रह करने में समर्थ होते हैं। मेरी आज्ञा का पालन करते हुए ये समस्त लोकों में विचरण करते रहते हैं॥६-७॥

हे परमेश्वरि! उत्तम भक्त भी तीन प्रकार के कहे गये हैं। अपने अपने उत्तम आचारों के कारण ये उस उस योग्य पदवी को प्राप्त किये हुए हैं॥८॥ अपनी अपनी भक्ति की विशेषता के अनुसार इनमें से कुछ आस्तिक जन सालोक्य पदवी को, कुछ सामीप्य पदवी को तथा कुछ सारूप्य पदवी को प्राप्त किये हुए हैं। ये इन पदों में मेरी आज्ञा के अनुसार ही निश्चिन्त होकर यहाँ निवास करते हैं॥९॥

हे देवि! उत्तम से उत्तम आचार वाले उत्तमोत्तम भक्त अपनी इच्छा के अनुसार उत्तमोत्तम पदवी को प्राप्त करते हैं॥१०॥ जो वीरशैव धर्म का अनुसरण करते हैं, प्राणलिंग की उपासना करते हैं और जो एकमात्र धर्माचरण में ही लगे रहते हैं, ऐसे भक्तों का भी उत्तमोत्तम कोटि में समावेश किया गया है॥११॥ जिस किसी भी मार्ग का अनुसरण करते हुए, जिस किसी भी विधि का सहारा लेते हुए जो भक्त मात्र भगवान् शिव में ही अपने मन को रमाये हुए हैं, वे भी उत्तमोत्तम भक्त कहलाते हैं॥१२॥

देव्युवाच

किमाकारा हि भक्ताश्च किंकर्माश्रितवृत्तयः।
कथंभूतगुणा ज्ञेयास्तत्सर्वं ब्रूहि शङ्कर॥१३॥

शिव उवाच

भक्तलक्षणम्

शिवभक्ता महात्मानः कामादिगुणवर्जिताः।
त्यक्तलोकसमाचारा निरस्तभवबन्धनाः॥१४॥
निर्माया निरहङ्कारा शान्ताः सर्वत्र पूजिताः।
रागादिगुणनिर्मुक्ता न वाक्पाणिवशंगताः॥१५॥
न चक्षुःश्रोत्रवशगाः क्षुत्तृड्भयविवर्जिताः।
तत्त्वनिष्ठाः सदा दान्ताः पुत्रदारादिनिस्पृहाः॥१६॥
शिवज्ञानरता नित्यं शिवज्ञानैकतत्पराः।
शिवधर्मरताः कर्मनिष्ठाः शिवपरायणाः॥१७॥

देवी का प्रश्न—

हे शंकर! इन भक्तों के लक्षण क्या हैं? ये अपना लोक-व्यवहार चलाने के लिये किस वृत्ति या कर्म का सहारा लेते हैं? किन गुणों के कारण इनकी पहचान होती है? यह सब आप मुझे बताइये॥१३॥

शिव का उत्तर—

महान् आत्मा के धनी ये शिवभक्त काम, क्रोध आदि दोषों से रहित होते हैं। लौकिक आचारों से ये दूर रहते हैं और इन्होंने अपने सांसारिक बन्धनों को काट डाला है॥१४॥ छल-कपट से ये दूर रहते हैं, इनमें अहंकार नहीं रहता, ये शान्त स्वभाव के होते हैं। सर्वत्र इनकी पूजा होती है, राग-द्वेष आदि दोषों से ये निर्मुक्त हैं और ये वाणी, कर-चरण आदि इन्द्रियों के वश में कभी नहीं रहते॥१५॥ नेत्र, श्रोत्र आदि इन्द्रियों के वश में भी ये नहीं होते। भूख-प्यास आदि के भय से भी ये मुक्त रहते हैं। ये तत्त्व की चिन्ता में सदा लगे रहते हैं, अपनी इन्द्रियों को सदा अपने वश में रखते हैं और पुत्र, पत्नी आदि के प्रति निस्पृह रहते हैं॥१६॥ ये शिवसंबन्धी ज्ञान में सदा लगे रहते हैं, उसकी प्राप्ति के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। सदा शिवधर्म का पालन करते हैं। ये कर्मनिष्ठ रहते हुए भी सदा शिव की आराधना में लगे रहते हैं॥१७॥ शिव की आराधना

शिवाश्रितेषु मर्त्येषु शिवज्ञाने शिवव्रते।
शिवाचारे च सर्वत्र शिवोत्सवपरेषु च॥१८॥
मम लिङ्गाङ्गसङ्गेषु चरेषु च विशेषतः।
भक्ताः कृताभिमानाश्च कृतकृत्या निराकुलाः॥१९॥
अव्यग्राः सत्त्वसम्पन्ना अधिज्ञानाश्च सर्वशः।
सत्यवाक्यरता नित्यं सदाचारव्रताः शुभाः॥२०॥
सर्वत्र सत्यसंकल्पा दुराचारविरोधिनः।
निर्द्वन्द्वा निर्मला नित्या निरानन्दाभिकाङ्क्षिणः॥२१॥
स्वदारनिरता नित्यं भूतिरुद्राक्षसंयुताः।
गुरुशुश्रूषणासक्ता गुरुकार्यैकतत्पराः॥२२॥
महोत्साहा महावीरा महासत्त्वपराक्रमाः।
एते भक्ता मया देवि कथिता लोकविश्रुताः॥२३॥

भक्तमहिमा

ते भक्ता यत्र तिष्ठन्ति तत्तीर्थं तत्तपोवनम्।
तस्मात् तद्दर्शनादेव धन्यो भवति मानवः॥२४॥

करने वाले मनुष्यों के साथ और शिवसंबन्धी उत्सवों के मनाने में लगे हुए मनुष्यों के साथ रहते हुए ये उत्तमोत्तम शिवभक्त शिव के ज्ञान, शिव के व्रत और शिव के आचार के पालन में सदा लगे रहते हैं॥१८॥ लिंगांगसामरस्य को प्राप्त हुए जीवन्मुक्तों के प्रति और विशेष रूप से चर (जंगम) के प्रति अभिमान, अर्थात् प्रेम, भक्ति, श्रद्धा रखने वाले ये भक्त सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर कृतकृत्य हो जाते हैं॥१९॥ ये कभी व्यग्र (बेचैन) नहीं रहते, सत्त्व गुण से सम्पन्न रहते हैं और सभी प्रकार के ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। ये सबका कल्याण करने वाले भक्त सत्य वचन बोलते हैं और सदाचार व्रत का पालन करते हैं॥२०॥ इनका संकल्प सदा सत्य से परिपूर्ण रहता है। ये दुराचार का विरोध करते हैं। सभी प्रकार के भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि के द्वन्द्वों से ये मुक्त रहते हैं। निर्मल चित्त के ये नित्य भक्त केवल अलौकिक आनन्द की चाह रखते हैं॥२१॥ केवल अपनी पत्नी में ही इनकी रति रहती है। ये सदा भस्म और रुद्राक्ष धारण करते हैं, गुरु की सेवा में सदा लगे रहते हैं और गुरु के कार्य की सिद्धि में तत्पर रहते हैं॥२२॥ हे देवि ! महान् उत्साह से सम्पन्न, महान् वीर, सभी प्राणियों में श्रेष्ठ पराक्रमी ऐसे भक्त ही मेरी दृष्टि में लोक में प्रख्यात होते हैं॥२३॥

ऐसे भक्त जहाँ रहते हैं, वही स्थान तीर्थ और तपोवन हो जाता है। इसी कारण ऐसे भक्तों को देखकर मानव धन्य हो जाता है॥२४॥ जो व्यक्ति ऐसे भक्तों की

ये पूजयन्ति तान् नित्यं मनोवाक्कायकर्मभि:।
तेषामहं समुद्धर्ता संसारभवसागरात्॥२५॥
ये पोषयन्ति तान् भक्त्या भोजनाच्छादनादिभि:।
ते वै मम प्रियकरास्तव चापि महेश्वरि॥२६॥
मासं संवत्सरं वापि यावज्जीवमथापि वा।
प्रकल्प्य जीविकां तेभ्यो यो रक्षति यथासुखम्।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये समाहितमना: शृणु॥२७॥
सर्वकर्माणि निर्धूय निर्मलो निरुपद्रव:।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विमानशतसंकुल:॥२८॥
अप्सरोगणसंकीर्ण: स्तूयमानो महर्षिभि:।
दिव्यं विमानमारुह्य सूर्यकोटिसमप्रभम्।
स गच्छेत् परमं स्थानं शिवलोके शिवात्मकम्॥२९॥
तत: पृथ्वीं समासाद्य प्राणलिङ्गाङ्गयोगभाक्।
तेन संशोधितप्राणो मत्सायुज्यमवाप्नुयात्॥३०॥
पादुकासनशय्यादि दत्त्वा तान् प्रणमेन्नर:।
तस्य सिद्धिर्भवत्येव सत्यं सत्यं वरानने।
किं पुनर्बहुनोक्तेन स एवाहं न संशय:॥३१॥

मन, वाणी और शरीर से नित्य पूजा करते हैं, उनका मैं इस संसार रूपी भवसागर से उद्धार कर देता हूँ॥२५॥ हे महेश्वरि! जो व्यक्ति ऐसे भक्तों को भोजन, वस्त्र आदि देकर भक्तिभाव पूर्वक पोषण करते हैं, वे मेरे तो प्रिय हैं ही, वे तुम्हारे भी प्रिय हैं॥२६॥ जो व्यक्ति एक मास अथवा वर्ष पर्यन्त अथवा जीवन पर्यन्त इनके लिये जीविका की व्यवस्था कर उनको यथाशक्ति सुख पहुँचाता हुआ इनकी रक्षा करता है, उनको मिलने वाले पुण्य को मैं बता रहा हूँ। तुम उसे सावधानी के साथ सुनो॥२७॥ अपने सभी कर्मों को नष्ट कर निर्मल अन्त:करण वाला ऐसा व्यक्ति बिना किसी विघ्नबाधा के अपने इक्कीस कुलों (पीढियों) का उद्धार कर सौ विमानों के साथ अप्सराओं से घिरा हुआ और महर्षियों के द्वारा स्तूयमान दिव्य विमान में चढ कर करोड़ों सूर्यों के समान कान्ति वाले शिवलोक में शिवात्मक परम पद को प्राप्त करता है॥२८-२९॥ वहाँ से पुन: जन्म ग्रहण कर पृथ्वी पर आने के बाद प्राणलिंग के साथ अपने अंगभाव को विलीन कर तथा अपने प्राणों को शुद्ध कर वह शिवसायुज्य को प्राप्त करता है॥३०॥ हे वरानने! ऐसे श्रेष्ठ भक्तों को पादुका, आसन, शय्या आदि प्रदान कर मनुष्य को उन्हें प्रणाम करना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को अवश्य की सिद्धिलाभ होता है, यह सच है, सच है। अधिक कहने से क्या लाभ, वह तो नि:सन्देह साक्षात् शिव ही हो जाता है॥३१॥

श्रेष्ठा भक्ताः

लोके हि बहुधा भक्ता नानालाञ्छनधारिणः।
तेषु श्रेष्ठा महादेवि शिवलाञ्छनसंयुताः ॥३२॥
तेषु लिङ्गाङ्गिनः श्रेष्ठा वीरशैवपरायणाः।
तेषु श्रेष्ठा महाभागाः षट्स्थलज्ञानपारगाः।
तेभ्योऽधिकस्तत्समो वा नास्ति भक्तो जगत्त्रये ॥३३॥

शिवो भक्तपराधीनः

भक्तस्तु तादृशो यत्र देशे वसति पूतधीः।
नित्यं वसामि तत्रैव सगुणोऽहं त्वया सह ॥३४॥
भक्तो हि मां वशीकर्तुं समर्थः खलु भामिनि।
यतो भक्तपराधीनो भक्त्याऽहं विवशीकृतः ॥३५॥
ततोऽहं नहि कैलासे न मेरौ न च मन्दरे।
यत्र तिष्ठन्ति मद्भक्तास्तत्र तिष्ठामि पार्वति ॥३६॥
तस्मात् सर्वाणि तीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि पर्वतान्।
भौतिकानि च सन्त्यज्य भक्तमेव भजेत् सुधीः ॥३७॥
अज्ञानादथवा लोभात् तेषामपकृतं यदि।
कल्पावसानपर्यन्तं सोऽन्धे तमसि मज्जति ॥३८॥

हे महादेवि! इस लोक में अनेक प्रकार के भक्त होते हैं, जो अनेक प्रकार के चिह्नों को धारण करते हैं। इनमें से शिवसंबन्धी चिह्नों से अंकित भक्त श्रेष्ठ होते हैं ॥३२॥ इनसे भी वीरशैव सिद्धान्त में निष्ठा रखने वाले लिंगांगसंगी भक्त श्रेष्ठ होते हैं। इनसे भी श्रेष्ठ वे महाभाग हैं, जो षट्स्थल के ज्ञान में पारंगत हो गये हैं। इन तीनों लोकों में इनसे बढ कर या इनके समान दूसरा कोई भक्त नहीं है ॥३३॥

ऐसी पवित्र बुद्धिवाला शिवभक्त जहाँ रहता है, सगुण स्वरूप धारण कर तुम्हारे साथ मैं वहीं रहता हूँ ॥३४॥ हे भामिनि! यह निश्चित है कि ऐसा भक्त ही मुझे अपने वश में करने में समर्थ होता है, क्योंकि उसकी भक्ति के कारण मैं विवश होकर उसके वश में हो जाता हूँ ॥३५॥ हे पार्वति! उस स्थिति में मैं न तो कैलाश में रह सकता हूँ और न मेरु पर्वत या मन्दराचव पर ही रह सकता हूँ। मैं तो वहीं रहता हूँ, जहाँ मेरे भक्त रहते हों ॥३६॥ इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह सभी तीर्थों को, पुण्य क्षेत्रों को और पर्वतों को छोड़ कर तथा अन्य पुण्यदायक भौतिक स्थानों को भी छोड़ कर एकमात्र शिवभक्त का सहारा ले ॥३७॥ अज्ञानवश अथवा लोभ में पड़ कर जो व्यक्ति इन शिवभक्तों का अपकार करता है, उन्हें हानि पहुंचाता है, वह व्यक्ति कल्प की समाप्ति तक नरकों के घने अन्धकार में डूबा रहता है ॥३८॥ ये शिवभक्त

लोकोपकारनिरता: सर्वत्र समदर्शिन:।
तान् द्विषन्ति हि ये मोहात् ते वै निरयगामिन:।
अतस्तेषां प्रकर्तव्या परिचर्या सदा नरै:॥३९॥
भकाराद्भव इत्युक्त: ककारात् कलुषं भवेत्।
तत: सन्त्रायते तस्माद्भक्त इत्युच्यते बुधै:॥४०॥
भक्तसेवासमं पुण्यं नास्ति नास्ति नगात्मजे।
भक्तद्रोहसमं पापं न भूतं न भविष्यति॥४१॥
एवमुक्तं मया सर्वं भक्तमाहात्म्यमुत्तमम्।
वदतां शृण्वतां चैव सर्वसम्पत्प्रदायकम्।
एतस्मादधिकं किञ्चिन्नहि सम्पत्प्रकाशकम्॥४२॥
एतावत् परमं तत्त्वमेतावत् परमं पदम्।
एतावत् परमं ज्ञानं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥४३॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे भक्तमाहात्म्यकथनं नाम नवम: पटल:॥९॥

सदा मानव जाति के उपकार में लगे रहते हैं, सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं। इन शिवभक्तों के साथ जो मोहवश द्वेषभाव रखते हैं, वे निश्चय ही निरयगामी होते हैं, नरक में गिरते हैं। अत: मनुष्यों को चाहिये कि वे ऐसे भक्तों की सदा परिचर्या करें॥३९॥ भकार से भव (जन्ममरण रूपी संसार) का ग्रहण किया जाता है और ककार से कलुष का। इस भव और कलुष से जो व्यक्ति की भलीभाँति रक्षा करता है, उसे विद्वान् मनुष्य भक्त कहते हैं॥४०॥ हे नगात्मजे! इस जगत् में भक्त की सेवा के समान दूसरा कोई पुण्य का कार्य नहीं है और इसी तरह से भक्त के साथ किये गये द्रोह से बढ कर दूसरा कोई पाप न हुआ है और न कोई होगा॥४१॥ इस तरह से मैंने तुमको भक्तों का यह उत्तम माहात्म्य पूरी तरह से बताया है। इसको कहने वालों और सुनने वालों को सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है। इससे बढ कर ऐसा कोई दूसरा उपाय ऐश्वर्य का प्रकाशक नहीं है॥४२॥ परम तत्त्व का सार इतना ही है, परम पद का सार भी इतना ही है, परम ज्ञान का सार भी इतना ही है, अर्थात् भक्तों का यह माहात्म्य परम तत्त्व, परम पद और परम ज्ञान का प्रकाशक है। अब इसके आगे तुम क्या सुनना चाहती हो॥४३॥

इस प्रकार श्री सूक्ष्मागम के क्रियापाद का यह भक्तों के माहात्म्य को कहने वाला नवम पटल समाप्त हुआ॥९॥



दशमः पटलः

देव्युवाच

श्रुतं सर्वं मया देव मोक्षमार्गैकसाधनम्।
स्तोतुमिच्छामि देव त्वामनुजानीहि मां प्रभो॥१॥

शिवस्तुतिः

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भक्तवत्सल।
नमस्ते करुणासिन्धो परमेशाय ते नमः॥२॥
ईशानाय नमस्तुभ्यं नमस्तत्पुरुषाय च।
अघोराय नमो देव वामदेवाय ते नमः।
सद्योजाताय देवाय पञ्चब्रह्मात्मने नमः॥३॥
षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपाय तत्त्वातीताय शम्भवे।
परतत्त्वस्वरूपाय तत्त्ववेद्याय ते नमः॥४॥
कालान्तक महादेव कालार्चितपदाम्बुज।
कालकल्पितमार्गाय कालरूपाय ते नमः॥५॥

देवी द्वारा शिव की स्तुति —

हे देव! मैंने आपके द्वारा उपदिष्ट मोक्ष-मार्ग के एकमात्र साधन के विषय में सब कुछ सुन लिया है। हे मेरे स्वामी महादेव! अब मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। इसके लिये मुझे आप अनुमति दें॥१॥

हे देवदेवेश! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। हे भक्तवत्सल! मैं आपको नमन करती हूँ। हे करुणासिन्धो! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। उस परमेश्वर के लिये मेरा यह नमस्कार निवेदित है॥२॥ ईशान स्वरूप आपको नमस्कार, तत्पुरुष स्वरूप आपको नमस्कार। हे देव! आपके अघोर और वामदेव स्वरूप का मैं नमन करती हूँ। सद्योजात देव के लिये और इन सबके संमिलित पंचब्रह्मात्मक स्वरूप के लिये मैं नमन करती हूँ॥३॥ छत्तीस तत्त्वमय और तत्त्वातीत शिव के स्वरूप के प्रति, जो कि परतत्त्व स्वरूप और इन तत्त्वों के द्वारा ही जाना जाता है, मैं नमन करती हूँ॥४॥ हे कालान्तक महादेव! काल आपके चरणों की पूजा करता है। आपके उस काल के द्वारा कल्पित मार्ग वाले कालस्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ॥५॥

किरातरूपमास्थाय विधेरन्यायवर्तिनः।
शिरोहराय दुष्टानां शासकाय च ते नमः॥६॥
दक्षाध्वरविनाशाय दक्षशीर्षापहारिणे।
भूयो रक्षितदक्षाय स्वयं दक्षाय ते नमः॥७॥
त्यक्तेश्वराणां शिप्राणां दर्शयित्वा स्वकं महः।
तद्रक्षणं कृतं येन तस्मै ते प्रभवे नमः॥८॥
समुद्रमथनोद्भूतहालाहलमहाभयात्।
त्रिजगद्रक्षितं येन विषकण्ठाय ते नमः॥९॥
कृतापराधं कन्दर्पं दग्ध्वा फालेक्षणाग्निना।
सोऽप्यनङ्गः कृतो येन तस्मै कामजिते नमः॥१०॥
मेरुकार्मुकशेषज्याविष्णुसायकभूरथः।
अजयत् त्रिपुरं यस्तु तस्मै ते जिष्णवे नमः॥११॥
व्याघ्रासुरमहादर्पदलनं वै विधाय च।
दध्रे तच्चर्म यस्तस्मै व्याघ्रामित्राय ते नमः॥१२॥

---

[१]किरात का रूप धारण करके आपने अन्याय पथ पर चल रहे ब्रह्मा के शिर को काट डाला था। आपके दुष्टों के शासक इस स्वरूप के प्रति मैं नमन करती हूँ॥६॥ दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले, दक्ष के शिर को काट डालने वाले और पुनः उसकी रक्षा करने वाले आपके स्वयं अतिनिपुण स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ॥७॥ ईश्वर का परित्याग कर देने वाले शिप्र जनों को आपने अपना ऐश्वर्य दिखा कर पुनः उनकी रक्षा भी की। आपके इस प्रभुस्वरूप के प्रति मैं नमन करती हूँ॥८॥ समुद्र के मन्थन के समय उत्पन्न हुए हलाहल विष के महान् भय से आपने तीनों लोकों की रक्षा की और उस विष को आपने अपने कण्ठ में धारण कर लिया। आपके इस स्वरूप को मैं नमन करती हूँ॥९॥ अपने प्रति अपराध करने वाले कामदेव को आपने अपने ललाट स्थित तृतीय नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया और फिर उसको अनंग स्वरूप प्रदान कर दिया। आपके इस कामजयी स्वरूप को भी मैं प्रणाम करती हूँ॥१०॥ मेरु पर्वत को धनुष, शेष नाग को धुनष की डोरी, विष्णु को बाण और पृथिवी को रथ बनाकर आपने त्रिपुर पर विजय प्राप्त की थी। आपके इस विजयी स्वरूप के प्रति भी मैं अपना मस्तक नवाती हूँ॥११॥ व्याघ्रासुर के महान् दर्प का दलन कर आपने उसके चर्म को धारण किया था। आपके इस व्याघ्रासुर का वध करने वाले स्वरूप को मैं प्रणाम कराती हूँ॥१२॥ त्रिलोकी के लिये

---

१. भगवान् शिव की २५ लीलाओं का उल्लेख इस आगम के प्रथम और द्वितीय पटल में आ चुका है। यहाँ पुनः उनमें से कुछ लीलाएं स्तुति के व्याज से दुहराई गई हैं।

त्रिलोकभीकरं घोरमन्धकाख्यमहासुरम्।
यो जघान नमस्तस्मै अन्धकासुरवैरिणे॥१३॥
जलन्धरमहादैत्यं पादाङ्गुष्ठकृतेन च।
चक्रेण योऽहरत् तस्मै जलन्धरजिते नमः॥१४॥
नारसिंहजिते तस्मै ब्रह्मशीर्षकपालिने।
तन्मालालङ्कृताङ्गाय हरिब्रह्महृते नमः॥१५॥
जित्वा त्रिविक्रमं भूयस्तत्कङ्कालधराय च।
शिरोवेष्टितमत्स्याय स्वतन्त्राय च वै नमः॥१६॥
महावराहदंष्ट्राभिर्भूषिताय महात्मने।
सोमसूर्याग्निनेत्राय महादेवाय ते नमः॥१७॥
बाणासुरस्तव प्रीत्या दत्तबाहुसहस्रिणे।
निवार्य तत्तमस्तस्मै वरदाय च ते नमः॥१८॥
पुरा चतुर्मुखं सृष्ट्वा तस्मै विश्वसृजे मुदा।
ददौ यश्चतुरो वेदांस्तस्मै वेदात्मने नमः॥१९॥

भय पैदा करने वाले, अतीव भयानक अन्धक नाम के महान् असुर का आपने वध किया था। आपके उस अन्धकासुर का नाश करने वाले स्वरूप को मैं नमन करती हूँ॥१३॥ जलन्धर नाम के महान् दैत्य को आपने अपने पैर के अंगूठे से बनाये गये चक्र से मार डाला था। आपके इस जलन्धर के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले स्वरूप के प्रति मैं नतमस्तक हूँ॥१४॥ नृसिंहावतार पर विजय प्राप्त करने वाले और ब्रह्मा के सिर का कपालपात्र बनाने और उसकी माला बनाकर अपने अंगों को अलंकृत करने वाले आपके इस हरि और ब्रह्मा पर विजय प्राप्त करने वाले स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ॥१५॥ त्रिविक्रम अवतार को जीतकर फिर उसका कंकाल धारण करने वाले और अपने शिर पर मत्स्यावतार को लपेट लेने वाले आपके स्वतन्त्र स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ॥१६॥ महावराह की दंष्ट्रा का आभूषण बनाने वाले और सोम, सूर्य एवं अग्नि रूप तीन नेत्रों को धारण करने वाले महात्मा महादेव को मैं नमस्कार करती हूँ॥१७॥ आपने प्रसन्न होकर बाणासुर को एक हजार भुजाएं प्रदान कर दी थी और उसके सामने उपस्थित अन्धकार को दूर कर उसे वर प्रदान किया था। आपके उस स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ॥१८॥ प्राचीन काल में आपने चतुर्मुख ब्रह्मा की सृष्टि कर उसे सारे विश्व की सृष्टि करने का अधिकार प्रसन्नतापूर्वक दे दिया था और उन्हें चारों वेद भी प्रदान किये थे। आपके उस वेदप्रदाता स्वरूप को भी मैं प्रणाम करती हूँ॥१९॥ सृष्टि के प्रारंभ में कृपापूर्वक आपने

विष्णवे लोकरक्षार्थं शङ्खं चक्रं च यो ददौ।
सर्गादौ कृपया तस्मै नमो विष्णुपराय ते॥२०॥
कल्पान्ते संहृतं कृत्वा जगत् स्थावरजङ्गमम्।
एको ननर्त यस्तस्मै महानाट्याय ते नमः॥२१॥
ब्रह्मणा हंसरूपेण विष्णुना क्रोडरूपिणा।
अनिर्देश्यमहालिङ्गमूर्तये ज्योतिषे नमः॥२२॥
सर्वभूताधिपतये सर्वविद्याधिपाय च।
सदाशिवाय ते देव ब्रह्माधिपतये नमः॥२३॥
विश्वतः पाणिपादाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च।
विश्वतो व्याप्यरूपाय नमो विश्वात्मकाय ते॥२४॥
अव्यक्ताय पुराणाय बहुरूपैकरूपिणे।
संस्थिताय तमःपारे तेजोरूपाय ते नमः॥२५॥

भगवान् विष्णु को लोक की रक्षा के लिये शंख और चक्र प्रदान किये थे। आपके उस विष्णु पर प्रसाद करने वाले स्वरूप को मैं नमस्कार करती हूँ॥२०॥ कल्प की समाप्ति के समय सारे स्थावर-जंगमात्मक जगत् का संहार कर आपने अकेले ही ताण्डव नृत्य किया था। आपके इस महानाट्यकारी स्वरूप के प्रति मैं अपना सिर नवाती हूँ॥२१॥ [२]हंसरूपधारी ब्रह्मा और वराहरूपधारी विष्णु आपके अनादि, अनन्त, अपरिच्छिन्न स्वरूप को जानने में असमर्थ रहे। ऐसे आपके इस ज्योतिर्मय महालिंग स्वरूप को मैं नमन करती हूँ॥२२॥ हे देव! आप सभी भूतों के स्वामी हैं, सभी विद्याओं के अधिपति हैं और आप ब्रह्मा के भी अधिपति हैं। आपके इस सदाशिव स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ॥२३॥ आपके हाथ और पैर सभी दिशाओं में सुशोभित हैं, आपकी आँखें और मुख सभी तरफ दिखाई पड़ते हैं, आपके रूप सर्वत्र व्याप्त हैं। आपके इस विश्वात्मक स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ॥२४॥ आपके अव्यक्त, पुराण, बहुरूप होते हुए भी एकरूप स्वरूप को, जो कि अन्धकार से बहुत दूर तेजोमय रूप में विराजमान है, मैं प्रणाम करती हूँ॥२५॥ सभी वेद मुख्य वृत्ति से,

---

२. हंस रूपधारी ब्रह्मा और वराह रूपधारी विष्णु की लिंग तत्त्व के आदि और अन्त की जानकारी के लिये की गई यात्रा का उल्लेख शिवपुराण की प्रथम विद्येश्वर संहिता (७।१६-१७) में मिलता है।

वेदा: समस्मा अपि मुख्यवृत्त्या भवन्तमेव प्रतिपादयन्ति।
कर्तारमेकं जगतां तथापि मायावृतास्त्वां नहि जानते हि॥२६॥
इन्द्रोऽनलो दण्डधरोऽथ नैर्ऋति: पाशी च वायुर्धनदश्च शूली।
कुर्वन्ति नित्यं निजकृत्यजातं यत्प्रेरितास्तं शरणं व्रजामि॥२७॥
विष्णुर्जगत्पाति सृजत्यजश्च रुद्रो हरत्येव लयावसाने।
यदाज्ञया ते निजकार्यदक्षास्तं शङ्करं त्वां शरणं व्रजामि॥२८॥
ददाति लक्ष्मी: श्रियमम्बिकाऽपि ज्ञानं च दिव्यं परमात्मनिष्ठम्।
वाणी च वाचं जनसंहतीनां यदाज्ञया तं शरणं व्रजामि॥२९॥
आपश्च भूतान्यपि जीवयन्ति वायुश्च वाति ज्वलतीह वह्नि:।
धत्ते च धात्रीमपि पन्नगेशो यदाज्ञया तं शरणं व्रजामि॥३०॥
इन्द्रादय: सर्वसुराश्च नित्यं त्वच्छासनेन प्रभवन्ति भूय:।
अन्ते च यान्ति स्वपदं पुराणं त्वामेव तस्माच्छरणं गताऽस्मि॥३१॥

अर्थात् प्रमुख रूप में आपका ही समस्त जगत् के एकमात्र कर्ता के रूप में प्रतिपादन करते हैं, तो भी आपकी माया से आवृत जीव आपको इस रूप में जान नहीं पाते॥२६॥ इन्द्र, अग्नि, यमराज, नैर्ऋत्य (राक्षस), पाशधारी वरुण, वायु, धनदाता कुबेर और शूली ईशान— ये सभी आठ दिक्पाल जिससे प्रेरित होकर प्रतिदिन अपने अपने कार्यों का निर्वाह करते हैं, उस भगवान् शिव की शरण में मैं जाती हूँ॥२७॥ हे शिव! जिसकी आज्ञा से अपने अपने कार्यों में निपुण विष्णु जगत् की रक्षा करते हैं, ब्रह्मा उसकी सृष्टि करते हैं और प्रलय काल में रुद्र उसका संहार करते हैं, उस भगवान् शिव की शरण में मैं जाती हूँ॥२८॥ जिसकी आज्ञा से जनसमुदाय को लक्ष्मी सम्पत्ति (धन-धान्य) प्रदान करती है, अम्बिका (पार्वती) परमात्मविषयक दिव्य ज्ञान प्रदान करती है और वाणी बोलने की सामर्थ्य प्रदान करती है, उस भगवान् शिव की शरण में मैं जाती हूँ॥२९॥ जिसकी आज्ञा से जल (वरुण देवता) सभी प्राणियों को जीवन प्रदान करता है, पवन बहता रहता है, अग्नि प्रज्वलित होती रहती है और इस पृथ्वी को पन्नगेश (शेषनाग) धारण करते हैं, उस देव की शरण में मैं जाती हूँ॥३०॥ इन्द्र इत्यादि सभी देवतागण सदा आपके शासन से ही पुन: पुन: शक्ति प्राप्त करते हैं और अन्त में अपनी पुरातन पदवी को प्राप्त कर लेते हैं। अत: इन नश्वर देवताओं को छोड़कर इनको शक्तिप्रदान करने वाले आपकी ही शरण में मैं जाती हूँ॥३१॥ यह चित्त आपकी माया से प्रेरित होकर ही पैदा

त्वन्मायया मोहितमेव जातं त्वत्प्रेरितं चित्तमिदं हि नित्यम्।
करोति कृत्यं नियतं त्वदुक्तं तस्माच्छरण्यं सततं भजे त्वाम्॥३२॥
ब्रह्माण्डसङ्घास्त्वयि संस्थिता हि यथा महाब्धौ जलबुद्बुदौघाः।
ब्रह्माण्डकोटयाश्रितदिव्यरूपं तस्मादहं त्वां प्रणता भवामि॥३३॥
गृहं स्मशानं भसितं त्वदङ्गे भृत्याश्च ते घोरपिशाचसङ्घाः।
भूषा तवास्थीनि करोटिमाला चित्रं तथापीश्वर ते शिवत्वम्॥३४॥
वस्त्रं च ते व्याघ्रकठोरचर्म हाराश्च सर्पा विषपूर्णवक्त्राः।
करस्थशूलाग्निकपालपाशा तथापि चित्रं शिवरूपमेतत्॥३५॥
त्यक्त्वा सतां वर्त्म पितुश्च पादौ छित्वा भवन्तं शरणं गताय।
विप्राय नित्यत्वफलप्रदाय तस्मै नमस्ते नतवत्सलाय॥३६॥

होता है और सदा आपके द्वारा प्रेरित होकर ही आपके द्वारा निश्चित कर्मों का अनुष्ठान करता है। मैं इस चित्त को प्रेरित करने वाले, शरण ग्रहण के योग्य आपका ही भजन करती हूँ॥३२॥ ये सब अनन्त ब्रह्माण्ड आपमें उसी प्रकार स्थित हैं, जैसे महासमुद्र में जल के बुदबुदे उठते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। इन करोड़ों ब्रह्माण्डों में दिव्य रूप से आप विराजमान हैं। इसलिये मैं आपके सामने ही प्रणत हूँ॥३३॥ हे ईश्वर! आपका घर [३]श्मशान है, आपके अंग पर भस्म रमी हुई है, घोर पिशाचों का समूह आपका भृत्यवर्ग है, आपके आभूषण अस्थियां हैं, खोपड़ियों की आपकी माला है। यह आश्चर्य की ही बात है कि इन सब अशुभ चिह्नों के रहते हुए भी आपको शिव कहा जाता है॥३४॥ व्याघ्र का कठोर चर्म आपका वस्त्र है, विष से भरे मुख वाले विषैले सर्प आपके हार हैं, आपके हाथ में शूल, अग्नि, कपाल और पाश है, इतना सब होते हुए भी यह आश्चर्य ही है कि आपको शिव कहा जाता है॥३५॥ सज्जनों के मार्ग को छोड़कर अपने पिता के पैरों को काट डालने के बाद आपकी शरण में गये ब्राह्मण को भी आपने नित्य ऐश्वर्य प्रदान कर दिया। इस तरह के शरणागत के प्रति स्नेह प्रदर्शित करने वाले आपको मैं प्रणाम करती हूँ॥३६॥ जिसने पृथ्वी और आकाश दोनों को व्याप्त कर रखा है,

---

३. महिम्नस्तोत्र के इस श्लोक से तुलना कीजिये—

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराश्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि॥(श्लो०२४)

येनावृते खं च मही च भानुर्यत्तेजसा निस्तपति प्रभावान्।
विश्वाधिकं[४] रुद्रमृषिं महान्तं वदन्ति तस्मै पुरुषाय ते नमः ॥३७॥
वेदाश्च यं स्तोतुमशक्नुवन्तस्त एव भूयो मनसा निवृत्ताः।
अप्राप्य[५] चानन्दनिधिं महेशं तं नौम्यवाङ्मानसगोचरं त्वाम् ॥३८॥
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते यथाऽब्धौ वीचयस्तथा।
त्वयि सर्वमिदं दृश्यं जगदेतच्चराचरम् ॥३९॥
स्वतन्त्रशक्तिमान् देव त्वमेव पुरुषोत्तमः।
त्वदधीनमिदं विश्वं विश्वनाथाय ते नमः ॥४०॥
समस्तसाधनोपाय सर्वसिद्धिप्रदायक।
सर्वाधार विरूपाक्ष भक्तवत्सल ते नमः ॥४१॥
शैवसिद्धान्तमार्गस्थभक्तकायस्थ शङ्कर।
नमस्ते दीनसुजनपरित्राणपरायण ॥४२॥
नमश्चापत्प्रतीकारकरणाय महात्मने।
सर्वान्तरात्मने तुभ्यं नमस्ते परमात्मने ॥४३॥

सूर्य जिसके तेज से प्रभावान् होकर प्रकाशित होता है, जिसकी श्रुतियाँ इस विश्व से अधिक रुद्ररूप में बखान करती है, उसे महान् ऋषि कहती है, उसी पुरुषश्रेष्ठ का मैं नमन करती हूँ॥३७॥ वेद भी जिसकी स्तुति करने में असमर्थ होकर मन के साथ वहाँ से बार-बार वापस लौट आते हैं और वे उस आनन्द के सागर महेश्वर के स्वरूप तक नहीं पहुंच पाते, उस वाणी और मन के अगोचर आपको मैं प्रणाम करती हूँ॥३८॥ जैसे समुद्र में तरंगे उत्पन्न होती हैं और विलीन हो जाती हैं उसी तरह से यह सारा चराचरात्मक दृश्य जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है और आपमें ही विलीन भी हो जाता है॥३९॥ हे देव! आप स्वतन्त्र शक्ति से सम्पन्न हैं, आप ही पुरुषोत्तम हैं, यह सारा विश्व आपके ही अधीन है। इस सारे विश्व के स्वामी आपको मैं नमस्कार करती हूँ॥४०॥ हे समस्त साधनों को प्राप्त कराने वाले! हे समस्त सिद्धियों को देने वाले! हे समस्त जगत् के आधार! भक्तों को स्नेह प्रदान करने वाले विरूपाक्ष! मैं आपको प्रणाम करती हूँ॥४१॥ हे शंकर! आप शैवसिद्धान्त मार्ग में स्थित भक्तों के अंगों में विराजमान हैं। दीन-दुःखी सज्जनों की रक्षा में लगे रहते हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूँ॥४२॥ आपत्तियों के निराकरण में लगे रहने वाले, समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा में निवास करने वाले, परमात्मस्वरूप महान् आत्मा के रूप में स्थित आपको मैं प्रणाम करती हूँ॥४३॥ हे देवेश! समस्त आम्नाय

---

४. "विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः" (श्वे० उ० ३।४) इस श्रुति का यहाँ उल्लेख है।
५. "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" (तै० उ० २।४) इस श्रुति का यहाँ उल्लेख है।

अखिलाम्नायसंस्तुत्य भक्तिग्राह्य स्तवप्रिय।
सर्वव्यापक देवेश नमस्ते भद्रदायक ॥४४॥
उपमातीत सर्वेश समस्तामरपूजित।
समस्तशक्तिसंकाश परब्रह्मन् नमोऽस्तु ते ॥४५॥
अनन्तकोटिमार्तण्डचण्डतेजःस्वरूपिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते ॥४६॥
ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूप कर्तृकृत्यक्रियात्मक।
भूतभव्यभवन्नाथ नमस्ते त्रिगुणात्मने ॥४७॥
नित्य निर्मल निर्द्वन्द्व निरामय निरञ्जन।
देवाचार्य नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥४८॥
महिमानं महादेव ज्ञातुं स्तोतुं तव प्रभो।
श्रुतयोऽप्यसमर्था[६] हि मादृशानां कुतो मतिः ॥४९॥
सर्वापराधान् मे स्वामिन् क्षमस्व जगतां प्रभो।
यतोऽहं देवदेवेश त्वदाज्ञावशवर्तिनी ॥५०॥

आपकी ही स्तुति करते हैं, भक्तिभाव से ही आपको पाया जा सकता है, आपको हमारे जैसों की स्तुति अत्यन्त प्रिय है, आप सर्वत्र व्याप्त हैं। हे सबको कल्याण प्रदान करने वाले! मैं आपका नमन करती हूँ॥४४॥ हे सर्वेश! आप सभी प्रकार की उपमाओं से परे हैं। समस्त देवता आपकी आराधना करते हैं। समस्त शक्तियां आपके समीप विराजमान हैं। हे परब्रह्मन्! मैं आपको प्रणाम करती हूँ॥४५॥ अनन्त कोटि (करोड़ों) सूर्यों के प्रचण्ड तेज के समान स्वरूप वाले, सच्चिदानन्द स्वरूप, निर्गुण भगवान् शिव का मैं नमन करती हूँ॥४६॥ हे त्रिगुणात्मक शिव! ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय ये तीनों आपके ही स्वरूप हैं, आप ही कर्ता, कृत्य और क्रिया भी हैं, आप ही भूत, भविष्यत् और वर्तमान के स्वामी हैं॥४७॥ हे नित्य, निर्मल, निर्द्वन्द्व, निर्विकार, निरंजन स्वरूप! आप सभी देवताओं के आचार्य हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ॥४८॥ हे मेरे स्वामी महादेव! आपकी महिमा को जानने में और तदनुसार आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं है। जब श्रुतियाँ भी आपके स्वरूप को नहीं जान पातीं, तो मेरे जैसे की बुद्धि वहाँ कैसे पहुँचेगी॥४९॥ हे त्रिलोकी के स्वामी, सभी देवताओं के स्वामी और मेरे भी स्वामी! आप मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर दें, क्योंकि मैं तो आपकी आज्ञा की वशवर्तिनी हूँ, जैसा आप कहते हैं, वैसा ही करती हूँ॥५०॥

---

६. "नेति नेति" (बृह० उ० ३।९।२६) इस श्रुति से इस अभिप्राय की पुष्टि होती है।

मया चापल्यभावेन यद्यदुक्तं तवाग्रतः।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव कृपादृष्ट्याऽवलोक्य माम् ॥५१॥

शिव उवाच

स्तोत्रेणानेन तुष्टोऽस्मि तव भक्त्या च पार्वति।
वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते ॥५२॥

देव्युवाच

वरमन्यं न याचेऽहं तव भक्तिं विना प्रभो।
तामेव सुदृढां देहि सैव मे परमा गतिः ॥५३॥

शिव उवाच

तथैव सततं भूयात् किमलभ्यं तव प्रिये
पुनर्भक्तहितार्थाय वरमन्यं ददामि ते ॥५४॥

स्तोत्रमहिमा

त्वया कृतमिदं स्तोत्रं भक्तिभावेन भावितः।
यः पठेन्नियतो भूत्वा स याति परमां गतिम् ॥५५॥

हे देव! चपलतावश आपके सामने मैंने जो कुछ कह दिया हो, उसे आप क्षमा करें और मुझे अनुग्रह से भरी दृष्टि से देखें ॥५१॥

शिव का कथन—

हे पार्वति! तुमने अभी इस स्तोत्र से मेरी जो स्तुति की है और इसके द्वारा मेरे प्रति जो भक्ति प्रकट की है, उससे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मन में जो मांगने की इच्छा हो, वह वर तुम मांगो, उसको मैं अवश्य पूरा करूँगा ॥५२॥

देवी का कथन—

हे स्वामिन्! आपके प्रति मेरी भक्ति बनी रहे, इसके सिवाय दूसरा कोई वर मैं नहीं चाहती। उस भक्ति को ही आप सुदृढ कर दें। वह भक्ति ही मेरी परम गति है ॥५३॥

शिव का कथन—

हे प्रिये! जैसा तुम चाहती हो, वैसा ही सदा हो। तुम्हारे लिये कौन वस्तु अलभ्य हो सकती है? इसके उपरान्त भी भक्तों के हित के लिये मैं तुम्हें दूसरा वर भी देता हूँ ॥५४॥

तुम्हारे द्वारा बनाये गये इस स्तोत्र का जो शिवभक्त भक्तिभाव से भर कर और एकाग्रचित्त होकर पाठ करेगा, वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त करेगा ॥५५॥

अभ्यसेदन्वहं देवि संवादमिममावयोः।
षट्स्थलज्ञानसम्पन्नः प्राप्नुयान्मुक्तिमुत्तमाम् ॥५६॥
एवमुक्तं मया देवि मोक्षमार्गैकसाधनम्।
वेदागमपुराणानां सारभूतं तव प्रिये ॥५७॥

शास्त्रस्य गोपनीयता

गोपनीयमिदं शास्त्रं वीरमाहेश्वरप्रियम्।
तेषामेव हि वक्तव्यं वीरमार्गानुसारिणाम् ॥५८॥
लिङ्गत्रयैकनिष्ठानां तत्प्रसादानुवर्तिनाम्।
अन्येषां तु न वक्तव्यं कदाचिद् भिन्नवर्त्मनाम् ॥५९॥
इति श्रुत्वा महाज्ञानं पावनं शिवशासनम्।
ध्यायमाना शिवं देवी तस्थौ सन्तुष्टमानसा ॥६०॥

इति श्रीसूक्ष्मागमे क्रियापादे शिवस्तोत्रनिरूपणं
नाम दशमः पटलः ॥१०॥

हे देवि! जो शिवभक्त हमारे इस संवाद का प्रति दिन अभ्यास करेगा, वह षट्स्थल के ज्ञान से सम्पन्न होकर उत्तम मुक्ति को प्राप्त करेगा ॥५६॥ हे देवि! हे प्रिये! इस तरह से तुम्हारे सामने मैंने जो कुछ कहा है, वह मोक्षमार्ग का एकमात्र साधन है, वेद, आगम और पुराणों का यह सारभूत तत्त्व है ॥५७॥

वीर माहेश्वरों के अत्यन्त प्रिय इस शास्त्र को सदा गुप्त रखना चाहिये। इसका उपदेश उन्हीं को करना चाहिये, जो वीरशैव मार्ग का अनुसरण करने वाले हों ॥५८॥ इस शास्त्र का उपदेश उन्हीं को करना चाहिये, जिनकी इष्टलिंग, प्राणलिंग और भावलिंग नामक तीनों लिंगों में दृढ भक्ति हो। इससे भिन्न मार्ग का अनुसरण करने वालों को इसका उपदेश नहीं करना चाहिये ॥५९॥ इस तरह से शिव द्वारा उपदिष्ट, परमपावन श्रेष्ठ ज्ञान के प्रदर्शक इस शिवशासन को सुन कर देवी पार्वती सन्तुष्ट मन से शिव के ध्यान में निमग्न हो गई ॥६०॥

इस प्रकार श्री सूक्ष्मागम के इस क्रियापाद का यह शिवस्तोत्र का निरूपण करने वाला दशम पटल समाप्त हुआ ॥१०॥

ग्रन्थ भी समाप्त हुआ ॥



परिशिष्टानि

मूलपञ्चाक्षरमन्त्रन्यासाः

श्लोकार्धानुक्रमणी

सहायकग्रन्थसूची

अधिकाः श्लोकाः, पाठान्तराणि च

मूलपञ्चाक्षरमन्त्रन्यासा:

ॐ नम: शिवाय इत्यस्य श्रीमूलपञ्चाक्षरमहामन्त्रस्य वामदेव ऋषि: (शिरसि), पङ्क्तिश्छन्द: (मुखे), श्री सदाशिवो देवता (हृदये), ॐ बीजम्, उमा शक्ति: (गुह्ये), शिव इति कीलकं (पादयो:), श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनियोग: ।

सृष्टिन्यासक्रम: (ब्रह्मचारिणाम्)

करन्यास:

ॐ	यं	ॐ	सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नम: ।
ॐ	वां	ॐ	नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नम: ।
ॐ	शिं	ॐ	अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नम: ।
ॐ	मं	ॐ	स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नम: ।
ॐ	नं	ॐ	अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नम: ।
ॐ	ॐ	ॐ	अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यांनम: ।

देहन्यास:

ॐ	यं	ॐ	ईशानाय नम: शिरसि ।
ॐ	वां	ॐ	तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ	शिं	ॐ	अघोराय नमो हृदये ।
ॐ	मं	ॐ	वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ	नं	ॐ	सद्योजाताय नम: पादद्वये ।
ॐ	ॐ	ॐ	प्रणवाय नम: सर्वाङ्गे ।

अङ्गन्यास:

ॐ	यं	ॐ	सर्वज्ञशक्तिधाम्ने हृदयाय नम: ।
ॐ	वां	ॐ	नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ	शिं	ॐ	अनादिबोधशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।
ॐ	मं	ॐ	स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने कवचाय हुँ ।
ॐ	नं	ॐ	अलुप्तशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ	ॐ	ॐ	अनन्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।

स्थितिन्यासक्रमः (गृहस्थानाम्)

करन्यासः

ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

देहन्यासः

ॐ शिं ॐ अघोराय नमो हृदये ।
ॐ वां ॐ वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ यं ॐ सद्योजाताय नमः पादद्वये ।
ॐ नं ॐ ईशानाय नमः शिरसि ।
ॐ मं ॐ तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ ॐ ॐ प्रणवाय नमः सर्वाङ्गे ।

अङ्गन्यासः

ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने कवचाय हुं ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।

संहारन्यासक्रमः (वानप्रस्थसंन्यासिनाम्)

करन्यासः

ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

देहन्यासः

ॐ नं ॐ सद्योजाताय नमः पादद्वये ।
ॐ मं ॐ वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ शिं ॐ अघोराय नमो हृदये ।
ॐ वां ॐ तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ यं ॐ ईशानाय नमः शिरसि ।
ॐ ॐ ॐ प्रणवाय नमः सर्वाङ्गे ।

अङ्गन्यासः

ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने कवचाय हुं ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः ।



श्लोकार्धानुक्रमणी

सहायक ग्रन्थ-सूची

अनुभवसूत्रम् — तन्त्रसंग्रह, भा० १, पृ० १२९-१७४; सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९७०

अमरकोशः — सुधाव्याख्यासहितः, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

अष्टप्रकरणम् — (तत्त्वप्रकाश– तत्त्वसंग्रह– तत्त्वत्रयनिर्णय– रत्नत्रय– भोगकारिका– नाद–कारिका– मोक्षकारिका– परमोक्षनिरासकारिकाख्यप्रकरणाष्टकात्मकम्) सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८८

अष्टावरण विज्ञान (हिन्दी) — डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, श्रीगुरु अमरेश्वर प्रकाशन, अमरेश्वरमठ, गुलेदगुड्ड (कर्णाटक), सन् १९८५

आगम और तन्त्रशास्त्र (हिन्दी) — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

ईश्वरगीता — (कूर्मपुराणान्तर्गता)।

उपनिषत्संग्रहः — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९७०

कूर्मपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९६२

कूर्मपुराण : धर्म और दर्शन (हिन्दी) — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन्१९८४

चन्द्रज्ञानागमः — शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९९४

तत्त्वप्रकाशः — (अष्टप्रकरण द्रष्टव्य)।

तन्त्रसंग्रहः — (वातुलशुद्धाख्यतन्त्र–सूक्ष्मतन्त्र–देवीकालोत्तर–पारमेश्वरतन्त्रात्मकः) — शंकरय्या अच्चप्पा टोपिगि, मैसूर, सन् १९१४

तन्त्रालोकः, विवेकव्याख्यासहितः — (१२ भागात्मकः) कश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९१८-१९३८

तैत्तिरीयोपनिषत् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

देवीकालोत्तरम् — तन्त्रसंग्रह, द्वितीय भाग, सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९७०

निगमागम संस्कृति (हिन्दी) — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, वीरशैव अनुसन्धान संस्थान, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९९२

नित्याषोडशिकार्णवः सेतुबन्धव्याख्यासहितः — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९७६

निरुक्तं यास्कमुनिप्रणीतम् — मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, नई दिल्ली, सन् १९८२

नेत्रतन्त्रम् (उद्योतसहितम्) — परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली,. सन् १९८५
परशुरामकल्पसूत्रम् — गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, सन् १९५०
पातञ्जलयोगसूत्रं सभाष्यम् — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९३२
पौराणिक कोश (हिन्दी) — ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी सन् १९८६
प्रत्यभिज्ञाहृदयम् — मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९६३
बृहदारण्यकोपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।
ब्रह्माण्डपुराणम् — मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९७३
मत्स्यपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५४
मनुस्मृतिः (भाषानुवादसहिता) — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सन् १९२९
महिम्नस्तोत्रं मधुसूदनीव्याख्यासहितम् — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सन् १९३०
रौरवागमः (भाग १-२) — फ्रेंच इंस्टीट्यूट, पांडिचेरी, सन् १९६१, १९७२
लुप्तागमसंग्रहः (द्वितीयभागः) — सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८३
वामनपुराणम् — नाग पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८३
वायुपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५९
विष्णुपुराणम् — गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१४
वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्मपद्धतिः — श्री मल्लिकार्जन शास्त्री शोलापुर, सन् १९०६
वीरशैवाचारप्रदीपिका — श्री मल्लिकार्जुन शास्त्री, पूना, सन् १९०५
शक्तिसंगमतन्त्रम् (चतुर्थभागः) — गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९७८
शारदातिलकम् (भागद्वयात्मकम्) — आगमानुसन्धान समिति, कलकत्ता, सन् १९३३
शिवपुराणम् — पण्डित पुस्तकालय, काशी, संवत् २०२०
शिवागमसंग्रहः (चन्द्रज्ञानागम-कारणागम-मकुटागम-सूक्ष्मागमात्मकः) (कन्नड़ लिपि) — पं० काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४२
श्वेताश्वतरोपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।
सिद्धान्तशिखामणिः सव्याख्या — शैवभारती भवन, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९३
सूक्ष्मागमः (देवनागरी लिपि) — श्री मल्लिकार्जुन शास्त्री, कल्पतरु प्रिंटिंग प्रेस, शोलापुर, सन् १९०१
सूक्ष्मागमः (कन्नड़ लिपि) — पं० काशीनाथ शास्त्री, पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९५६



अधिका: श्लोका:

सूक्ष्मागम का सम्पादन पं० काशीनाथ शास्त्री जी के मैसूर से कन्नड़ लिपि में सन् १९४२ एवं १९५६ में प्रकाशित संस्करणों के आधार पर हुआ है। इन दोनों संस्करणों में कोई अन्तर नहीं है। इसके अतिरिक्त देवनागरी लिपि में स्वतन्त्र रूप से शोलापुर के मल्लिकार्जुन शास्त्री जी के द्वारा यह सन् १९०१ में तथा सन् १९४२ में कन्नड़ लिपि में हुबली से प्रकाशित तन्त्रसंग्रह के अन्तर्गत भी इसका प्रकाशन हुआ है। पं० काशीनाथ शास्त्रीजी के संस्करण से इन दोनों संस्करणों में पाठभेद तो हैं ही, अनेक श्लोक भी अधिक हैं। उनका यहाँ 'अधिका: श्लोका:' और 'पाठान्तराणि' शीर्षकों से संग्रह किया जा रहा है। पं० काशीनाथ शास्त्री जी के संस्करण को यहाँ 'क' पुस्तक मानकर अन्य दो संस्करणों को (हिन्दी और कन्नड़) क्रमशः 'ख' और 'ग' संकेत से सूचित किया गया है।

पृ. २, पं० ७ त: परम्

इदानीं श्रोतुमिच्छामि शास्त्रं सर्वार्थसाधनम्।

पृ० ३, पं० ४ त: परम्

सूक्ष्मतन्त्रं मया प्रोक्तं सूक्ष्मतत्त्वावभासकम्।
सारांशतत्त्वं निश्चित्य पटलैर्दशभि: प्रिये।
वक्ष्येऽहं ते समासेन शिवज्ञानैकसाधनम्॥

पृ० ८, पं० १५ त: परम्

एवं सदाशिवं ध्यायेत् सर्वकारणकारणम्।
महेशं कर्मसादाख्यं रजोगुणसमन्वितम्॥
सृष्टिस्थित्यन्तकर्तारं पञ्चविंशतिभेदकम्।

पृ० ११, पं० १० त: परम्

इदमेव पुरा प्रोक्तं कथाभिर्विविधै: शुभै:।
वातुलादिषु तन्त्रेषु समस्तेषु सविस्तरम्॥
तद् विस्मृतं वरारोहे त्वया चापल्यभावत:।

पृ० १३, पं० १२ त: परम्

पुन: कल्पान्तरे विष्णोस्तपसा तोषित: शिव:।
भूत्वा प्रसन्न: प्राहेदं ब्रह्मपुत्रो भवाच्युत॥
वहस्व वृषरूपेण मे सदा वस च ध्वजे।

इत्यादिष्टस्तथा विष्णुश्चकार शिवशासनम्॥
ततश्च वृषवाहत्वमाप्तवान् परमेश्वरः।
पुरत्रयजयार्थं हि कल्पितं च महारथम्॥
भग्नं दृष्ट्वा तथा विष्णुमुवाच शशिशेखरः।
वृषो भूत्वा वहस्वेदं रथमाशु पुरत्रयम्॥
संहरिष्यामि ते शत्रुं त्रिपुरं लोककण्टकम्।
एवं च वृषवाहत्वं शिवस्य कथितं बुधैः॥

पृ० १९, पं० ५ तः परम्

कल्पादौ कृपया विष्णुं रक्षकं जगतां शिवः।
निरायुधं तथा दृष्ट्वा शङ्खं चक्रं ददौ पुनः॥
तस्मै दुष्टवधार्थाय तेन चक्रप्रदो हरः।

पृ० २०, पं० ६ तः परम्

कुतश्चित् कारणाद् रुद्रोऽयजदेकपदा प्रिये।
प्रसन्नः पालयामास जगत् स्थावरजङ्गमम्॥

पृ० २१, पं० ९ तः परम्

लीलया परमेशस्य कर्मसादाख्यरूपतः।

पृ० २२, पं० ५ तः परम्

प्रष्टव्यमद्रिजे तत्र तदेतद् वद पार्वति।
न तत्र शङ्का कर्तव्या सत्यमेतद् वदाम्यहम्॥

पृ० २३, पं० ४ तः परम्

त्वमेव सर्वं जानासि सर्वज्ञ परमेश्वर।

पृ० २४, पं० ९ तः परम्

तेषामतिशयाश्चैव समुद्राः सरितो नगाः।

पृ० २६, पं० १४ तः परम्

विशेषं यत्र दीक्षासु पूर्विका भक्तिरस्ति हि।
न तत्र जातिभेदोऽस्ति सर्वे रुद्रस्वरूपिणः॥
यत्र स्याज्जातिसामान्यं तत्र जात्यादिकल्पना।
तस्मादयोग्यो योग्यश्चेत्येवं शङ्का न तत्र हि॥
अतो यदा महादेवि मयि भक्तिर्दृढा भवेत्।
तदा षडक्षरं मन्त्रमुपदिश्येन्न संशयः॥

पृ० २८, पं० २ तः परम्

प्रणवेन समासीनं करसम्पुटिकाह्वया।
पञ्चाङ्गैरङ्गुलिन्यासो मूलेन व्यापकत्रयम्॥

पृ० २८, पं० ६ तः परम्

पञ्चाक्षरैः पञ्चभिश्च मूर्तिभिः पूर्ववन्न्यसेत्।
एवं प्राग्दक्षिणोदीचीपश्चिमोर्ध्वमुखेषु च॥

पृ० २८, पं० ८ तः परम्

ततश्च गोलकन्यासं शृणु गोप्यं वरानने।
हृदास्यनासोरुयुगे क्रमान्न्यस्य षडक्षरान्॥
एवं ग्रीवाकुक्षिपार्श्वयुग्मपृष्ठहृदि न्यसेत्।
मूर्धास्ययोश्चक्षुषोश्च नासायां चैव पूर्ववत्॥
दोषाद्यग्रेषु चैवं हि पादाग्रेष्वपि विन्यसेत्।
मूर्धास्यजठरे चोरुद्वन्द्वे पादद्वयेऽपि च॥
हृदयास्यशिरोग्रीवभुजद्वयकरद्वये।
मुखात्तु हृदये त्रींश्च वर्णान् पादोरुकुक्षिषु।
कृत्वैवं गोलकन्यासं मूर्तिं पुनरपि न्यसेत्॥

पृ० ३२, पं० ६ तः परम्

आज्यमुख्यैस्तिलैर्लक्षं जुहुयात् साधकोत्तमः।
सर्वान् वै नाशितान् क्लेशान् दैविकांश्च विनाशयेत्॥

पृ० ३२, पं० ८ तः परम्

भक्त्यादिनियमादेवं जपेन्नित्यं विधानतः।

पृ० ३२, पं० १४ तः परम्

अनेनैव हि मन्त्रेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
यथायोगं समारब्धन्यासावाहनकादिभिः॥

पृ० ३३, पं० ८ तः परम्

तन्त्रासक्तेन दुर्ज्ञेया सिद्धिः केनापि मन्त्रजा।

पृ० ३७, पं० २ तः परम्

ततः शुद्धो भवत्येव नात्र कार्या विचारणा॥
यथानेन समो मन्त्रो नास्त्येवागमकोटिषु।
तथैतन्मनुराजेन समो नास्ति वरानने॥

पृ० ४५, पं० ७ तः परम्

ईशानपुरुषाघोरवामसद्याननानि च।
गोप्याननं यकारादिप्रणवान्तं विचिन्तयेत्॥
ज्ञानं चापि तथाचारो गुरुर्लिङ्गं चरस्तथा।
प्रसादश्चेति विज्ञेयो यादितारान्तगोचरः॥

पृ० ४८, पं० १ तः परम्

जीवेश्वरपरात्मादिनामधेयो वागगोचरः।

पृ० ४९, पं० २ तः परम्

वक्तव्यं हि प्रयत्नेन शिवज्ञानैकसाधनम्।

पृ० ५३, पं० १३ तः परम्

यथा हेमाग्निसम्पर्कात् सुवर्णत्वमवाप्यते।
तथा श्रीगुरुसम्पर्काद् वर्णश्रेष्ठो भवेन्नरः॥

पृ० ५५, पं० १ तः परम्

एतादृशं गुरुं ज्ञात्वा शुश्रूषां वै समाचरेत्।

पृ० ५७, पं० ५ तः परम्

तल्लिङ्गं स्थापयित्वाऽथ शिष्येऽस्मिन् देशिकोत्तमः।
निवेद्य तत्प्रसादं च प्राप्यानुज्ञां शिवात्मिकाम्॥

पृ० ६०, पं० १ त उपरि

नानाविधानि काष्ठानि वह्नियोगाद् यथाग्निताम्।
तथानेकविधा मर्त्या गुरुतः शिवतामियुः॥
काञ्चनं रजतं ताम्रं रसयोगात् सुवर्णताम्।
यथा शिवज्ञानरसाच्छात्रादिः शिवतां व्रजेत्॥
यस्यैवं शाम्भवी दीक्षा जाता गुरुकृपावशात्।
पूर्वजात्यादिकं तस्य न स्मरेत् प्राकृतं हि तत्॥
अप्राकृतस्य भक्तस्य गुरुहस्तामलाम्बुजात्।
पुनर्जातस्यात्मजन्म जात्यादि न च कल्पयेत्॥
पाषाणादिकृतं लिङ्गं यद्वत् पूज्यं प्रतिष्ठितम्।
नीचवंशोद्भवश्चापि भक्तश्चेदीश्वरे तथा॥
भक्तस्य प्राक्तनं जन्म नामजात्यादिकं च यत्।

पृच्छेद्वा कथयेद्वापि स वै पातकिनां वर:॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मम लिङ्गाङ्गसङ्गिनम्।
मामेव मनुते यस्तु सोऽपि मुच्येत बन्धनात्॥

पृ० ६१, पं० १ त: परम्

श्रुतं पञ्चाक्षरं मन्त्रं मया प्रणवपूर्वकम्।
त्वत्प्रसादान्महादेव तत्त्वं चास्य विशेषत:॥

पृ० ६१, पं० १२ त: परम्

तिलेषु तैलं पुष्पेषु गन्धो यद्वद् विभासते।
तथा गुरुकटाक्षेण तां पश्येज्ज्ञानचक्षुषा॥

पृ० ६३, पं० ११ त: परम्

ब्रह्मविष्ण्वादिदेवाश्च वेदैर्व्यासोपबृंहणै:।

पृ० ६४, पं० १४ त: परम्

भूतस्थानद्रव्यमन्त्रलिङ्गानां शुद्धय: क्रमात्॥
नकारादियकारान्तैर्नमोऽन्तै: प्रणवान्वितै:।
कर्तव्या प्रणवेनादौ वीरशैवपरेण च॥

पृ० ६६, पं० १४ त: परम्

अन्तर्निविष्टचित्त: स्यात् कर्मणा तस्य किं फलम्।
कृत्वा वा कर्म सकलं नाश्नीयात् तत्फलं हि यत्॥

पृ० ६९, पं० ४ त: परम्

समर्चनोपचारांश्च मूलेनैव हि दापयेत्।

पृ० ७१, पं० १६ त: परम्

सर्वेषामपि पापानां प्रायश्चित्तं शिवस्मृति:।
निन्द्यन्ते येन किञ्चित् स नरकेषु न निष्कृति:॥

पृ० ७४, पं० ३ त: परम्

शिवपूजाफलं चापि सर्वमेतन्मया श्रुतम्।

पृ० ७४, पं० ५ त: परम्

त्वदन्य: संशयस्यास्य छेत्ता नह्युपपद्यते।

पृ० ७६, पं० १६ त: परम्

सामान्यभेदा: पूजादि शिवस्य परमात्मन:।
सर्वत्र शिवभावश्च सामान्यमिति गीयते॥

पृ० ७९, पं० ६ त: परम्

आदौ त्रिधा मया प्रोक्तं वीरशैवं महेश्वरि।

पृ० ८१, पं० ९ त: परम्

एवं चरिष्ये नियमानहमाप्राणसंचरात्।
प्राणान्न चान्यथा काङ्क्षे भावोऽयं प्राणलिङ्गिनाम्॥

पृ० ८२, पं० १ त उपरि

अभ्यङ्गं भोजनं वापि सङ्गमं वा वरानने।
जङ्गमेन विना कुर्यान्न विशिष्टो न मे प्रिय:॥
शयनेष्वासने याने देवनादिषु सर्वदा।
चरार्पितं विना देवि यो भुञ्जीयात् स नारकी॥

पृ० ८३, पं० ११ त: परम्

पतितेऽपि तथा नष्टे दग्धे चोरादिभिर्हृते।
दारितेऽपि तथा लिङ्गं न संस्कुर्यात् पुन: प्रिये॥

पृ० ८६, पं० ४ त: परम्

एकान्नं वा विभुञ्जीयात् प्रार्थितं सद्भिरादरात्।

पृ० ८७, पं० ४ त: परम्

अन्योन्यमेते वन्द्या: स्यु: शिवभावेन चेतसा।

पृ० ८८, पं० ८ त: परम्

न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगकरणादिकम्।
सामुद्रिकं च भक्तानां नास्ति लिङ्गाङ्गसङ्गिनाम्॥

पृ० ८९, पं० २ त: परम्

तस्माल्लिङ्गार्चनं शीघ्रं कुर्यान्नित्यमतन्द्रित:।
नास्ति प्रमाणं जन्तूनामुत्तरक्षणजीविनाम्॥

पृ० ८९, पं० ७ तः परम्

तस्मान्नोक्तं मया पूर्वं तव प्रीत्या प्रकीर्तितम्।

पृ० ९०, पं० ११-१३ स्थाने

[1]प्रथमं गुरुलिङ्गं स्यात् तत आचारलिङ्गकम्॥
ततः प्रसादलिङ्गं स्याच्चरलिङ्गमतः परम्।
शिवलिङ्गमतो ज्ञेयं महालिङ्गमतः परम्॥

पृ० १०४, पं० १३ तः परम्

सुसूक्ष्ममपि संक्षेपं तस्य मन्त्रमिदं शुभम्।

पृ० १०७, पं० १५ तः परम्

वीरव्रतपरा ये च तस्य व्रतपरायणाः।
ये च धर्मैकनिरता भक्तास्ते चोत्तमोत्तमाः॥

पृ० १०८, पं० १० तः परम्

सुखदुःखोभयं नास्ति यत्संयोगवियोगजम्।

पृ० ११४, पं० ८ तः परम्

व्याघ्रासुरमहादर्पं दलयित्वाऽथ तोदकृत्।
दध्रे तद् द्वीपिनश्चर्म तस्मै व्याघ्रजिते नमः॥

पृ० ११४, पं० १२ तः परम्

त्रिलोकभीकरं घोरमन्धकाख्यं महासुरम्।
यो जघान नमस्तस्मै अन्धकासुरवैरिणे॥



---

१. ख. ग. पुस्तकयोः षड्लिङ्गानामयमेव प्रतिपादनक्रमः सम्पूर्णेऽपि पटले। १०३ पृष्ठेऽप्ययमेव क्रमोऽङ्गीकृतः।

पाठान्तराणि

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितपाठः	ख. ग. पाठः
१	९	विभ्राजते महाशृङ्गं	तत्रोचिते महाशृङ्गे
		सौवर्णं दिव्यमन्दिरम्	सौवर्णे दिव्यमन्दिरे
१	१०	तत्रस्थे मणिमण्टपे	मण्टपे मणिचित्रिते
२	२	देवी	देवं
२	१३	हि त्वयाऽनघे	सर्वसाधनम्
३	६	तेन मनसा	तमना भूत्वा
४	१	विमोचकः	नियामकः
४	२	शम्भुः	क्षुब्धः
४	१०	रजायत	रभूत् प्रिये
७	२	समायुक्त	युतं चैव
७	३	समप्रभम्	समुद्भवम्
७	१०	चतुः	[1]**पञ्च**
८	१३	स्तथा वामकरैः शुभैः	र्वामतः शृणु पार्वति
८	१४	तथैव च	करैस्तथा
९	१७	एकपादं ततो	पादाङ्गुष्ठं तथा
१०	५	यमाद्य	योगैर
१२	९	शङ्करस्तपसा तस्य	शिवोऽपि तपसा तेन
१४	२	पुरा लोकहितार्थाय	ततः सदाऽनपायिन्या
१५	८	कर्ण	**कण्ठ**
१५	९	तत्कालं	तत्काले
१५	१०	क्रूरं	क्रुद्धं
१६	१	त्रिपुरं	एकेन
१६	४	रीति तेनायं	रिरिति ह्यस्मात्
१६	५	पुरा	कश्चिद्
१६	५	सुदारुणः	सुदुर्जयः
१७	४	तदा	यतः
१७	५	तस्मात् प्रोक्तं पिनाकिनः	तथा शम्भोर्महात्मनः
१८	८	पूर्वं	अथ

१. कृष्णाक्षरसंदृब्धाः पाठा मूले स्थापनार्हाः।

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितपाठः	ख. ग. पाठः
१९	८	तद्ददौ	प्रददौ
१९	१३	हिरण्याक्षसुतः पूर्वं बलवानन्धकासुरः	पुरा तारकपुत्रास्ते दैत्यास्त्रिपुरवासिनः
१९	१४	दर्पितो	दर्पिता
१९	१४	बाधते	बाधन्ते
२०	३	अन्धकं तु	पुरत्रयं
२१	११	भेदैश्च लीला बहुविधाः श्रुताः	भेदास्ते मूर्तयो वै महेशितुः
२२	३	विद्यते	शोभने
२२	४	मुक्तिदं	गोपितं
२२	५	जगदुद्धार....	पङ्क्तिरेषा नास्ति
२३	८	केचित्	परे
२४	१०	गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धा	पक्षिणः पन्नगाश्चैव
२५	११	परार्थैक	शिवार्थैक
२६	६	देयस्तेषां न जातुचित्	देयो नैषां कदाचन
२७	९	पूर्वस्थं	पूर्वास्यं
२७	१७	पञ्चमे	पञ्चमम्
२८	९	न्यासमेवं क्रमात् कृत्वा	विन्यस्य व्यापकं चाथ
३०	२	वस्त्रपालस्यादि	वः प्रमादालस्य
३०	१३	माचरेत्	मारभेत्
३४	२	श्रेष्ठा हि जपमालार्थं	जपमाला कृता श्रेष्ठा
३५	६	जपेन्नित्यं न धारयेत्	नित्यं जपमथाचरेत्
३६	१०	रम्भफलं शिवे	रम्भं फलेच्छया
३९	८	शृणुष्व सुसमाहिता	समाहितमनाः शृणु
३९	१०	सर्वमन्त्रेषु मुख्योऽयमाद्यः	सर्वेषु मन्त्रजालेषु मुख्यः
४१	८	अकारं बिन्दुरूपं च जाग्रत्स्थ-मिति भावयेत्	अकारं स्थापयेद् बिन्दुं जाग्रत्स्थाने वरानने
४१	१०	वरानने	विनिर्दिशेत्
४१	११	तुर्यास्थमिति भावयेत्	तुर्यस्थं तु प्रचक्षते
४१	१५	मान्तेन	भान्तेन
४२	२	णोद्भवम्	णाननम्
४२	८	चोत्तरोद्भवम्	सौम्यवक्त्रके
४२	११	चोर्ध्वसम्भवम्	पुरुषानने
४३	१	कर्मतत्त्वं तथेशानः	कर्मेशतत्त्वमीशान

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितपाठः	ख. ग. पाठः
४३	३	उदीरितम्	उदाहृतम्
४३	१२	मुदीरितम्	मुदाहृतम्
४६	११	स्मृतः	परः
४८	१	कथितं शिवे	शृणु पार्वति
४९	३	मात्मज्ञानप्रकाशकम्	सर्वागमनिदर्शितम्
४९	५	तमोत्तमम्	त्तरोत्तरम्
५१	१	स्त्रीसङ्गरहितो	स्वदारनिरतः
५१	८	शिवभक्तजनप्रियः	साधुर्भक्तप्रियः सदा
५२	१	गुरु	शिव
५४	२	स एव वन्दनीयश्च	स एवायं वरीयांश्च
५४	२	सर्वदा	सर्वथा
५७	१४	कर	कुक्षि
५८	२	प्राणं	प्राणान्
५९	७	चागामि सञ्चितम्	चागामिकं तथा
६१	२	गुरुशिष्य....	पङ्क्तिरेषा नास्ति
६१	६	यत् त्वया परिचोदितम्	त्वया प्रश्नः कृतः शुभः
६२	२-३	लिकारो....कारणम्	श्लोक एष नास्ति
६२	१४	श्चोदेति नियतो	श्च द्योतते नित्यं
६३	६	देवदानवगन्धर्वा	देवाः सरक्षोगन्धर्वा
६४	१५	आदौ	ततो
६५	११	सकामे तु	सकामस्तु
६५	१२	निष्कामेऽपि	निष्कामोऽपि
६५	१४	तपोयज्ञो महादेवि	ध्यानयज्ञपरो देवि
६९	८	मतः	यतः
६९	१५	वै शिष्टो	विशिष्टो
७०	२	स्थलं	स्थले
७०	१३	लभते नरः	प्रतिपद्यते
७१	२	जपेत्	जपन्
७१	१५	मूकाश्च	मूर्खाश्च
७२	१	लिङ्गाङ्गानां	लिङ्गिनां च
७४	३	क्तः शिवपूजाविधिक्रमः	क्तो वीरशैवार्चनक्रमः

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितपाठः	ख. ग. पाठः
७४	१०	तव	शृणु
७५	८	तद्वंश्यानां	तादृशानां
७५	८	चेत्तु	देवि
७५	९	दूर्ध्वं	त्पूर्वं
७५	९	पूज्य शङ्करम्	पूजयेच्छिवम्
७६	३	ते ज्ञेया	विज्ञेया
७८	११	विनिर्गते तथा पीठाद्	विरोधिना् तस्करेण
८०	३	ध्रुवम्	व्रजेत्
८०	५	महादेवि	सदा देवि
८१	१२	सदनं च	भार्यामपि
८१	१५	मादरात्	मात्मसात्
८२	६	सेवा तथा शिवे	सेवापरस्तथा
८२	८	रसादयः	रसादरः
८२	९	लाभो	लोभो
८५	७	शिक्षाशी	**भिक्षाशी**
८६	८	दत्तं	तदा
८८	४	पेक्षां	काङ्क्षां
८८	१२	तदेक	तदैक्य
८८	१२	योगिनः	सङ्गिनाम्
८९	१०	चारे व्रते चापि निरताय	चाररतायापि विरक्ताय
९०	६	देव	सम्यक्
९१	१२	द्या अध्व	द्यैरध्व
९६	२	स्थिरं	शुद्धं
९६	१०	तथा वीरः	वीरशैवः
९६	११	चाचारलिङ्गादि	च गुरुलिङ्गादि
९७	७	तामीश	तां भक्त
१००	११	अन्य	असद्
१००	१३	हार	चार
१०१	३	करं	करौ
१०४	४	आचारलिङ्गमुख्यानां	गुरुलिङ्गस्थलादीनां
१०६	५	कृपया तद्	कृपयैतद्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	मुद्रितपाठः	ख. ग. पाठः
१०६	९	शृणुष्व सुसमाहिता	शृणु नान्यमनाः प्रिये
१०६	१५	तत्र	तेऽत्र
१०७	१५	ये च धर्मैकनिरता	वीरमाहेश्वराचारास्ते
१०७	१५	भक्तास्ते चोत्तमोत्तमा	भक्ताश्चोत्तमोत्तमाः
१०९	२	चारे च	**चारेषु**
११०	४	करा	तरा
१११	५	तेषु	तत्र
१११	१५	भजेत्	यजेत्
११२	४	इत्युक्तः	निर्दिष्टः, उद्दिष्टः
११२	५	तस्मा	यस्मा
११२	१०	सम्यत्	संवित्
११६	४	नाट्याय	लास्याय, नागाय
११६	१२	तेजो	ज्योती
११७	२	स्त्वां नहि जानते हि	स्तन्नहि जानते नराः
११७	४	व्रजामि	भजे त्वाम्
११७	५	विष्णुर्जगत्पाति सृजत्यजश्च	ब्रह्मा जगत् सृजति विष्णुरवत्यवस्थां
११७	५	हरो हरत्येव लयावसाने	रुद्रोऽपि संहरति च प्रलयावसाने
११७	१०	व्रजामि	व्रजेऽहम्
११८	२	भजे त्वाम्	भजेऽहम्
११८	८	पाशा त	**पाशास्त**
११९	४	त्वाम्	भजे
१२१	११	ददामि ते	ददाम्यहम्
१२२	१०	महाज्ञानं	वरं ज्ञानं



जंगमवाडी मठ में उपलब्ध ग्रन्थ

(१) लिङ्गधारणचन्द्रिका (हिंदी भावानुवादसहित)।
(२) सिद्धान्तशिखामणिः, तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यासहितः, मराठी भावानुवाद- सहितश्च। सं० ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी, विशेष आवृत्ति।
(३) श्रीकण्ठभाष्यम् (चतुःसूत्री) अप्पयदीक्षितकृत शिवार्कमणिदीपिका-संस्कृत- टीकासहितम्।
(४) वीरशैव अष्टावरण विज्ञान (मराठी और हिंदी) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी। (भाग १-१३)
(५) जन्म हा अखेरचा (मराठी) (भाग १-१३) ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी।
(६) सिद्धान्तशिखामणि-समीक्षा (संस्कृत-शोधप्रबन्ध) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी।
(७) संक्षिप्त शिवपूजाविधिः (मराठी)।
(८) महानारायणोपनिषद् (वीरशैवभाष्य)।
(९) शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धांत (मराठी)।
(१०) सिद्धान्तशिखामणिः (मूलमात्र)।
(११) निगमागम संस्कृति (हिन्दी) — पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(१२) वीरशैव पंचपीठ परंपरा (मराठी) — अनुवादक डॉ० चन्द्रशेखर कपाळे।
(१३) ईशावास्योपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१४) केनोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१५) मुण्डकोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१६) सिद्धान्तशिखोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१७) सूक्ष्मागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(१८) चन्द्रज्ञानागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(१९) मकुटागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(२०) कारणागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय।